वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 68
ISBN 978-93-80353-10-4

आटे का मुर्गा

(यशोधर चरित के आधार से)

–रचयित्री –

गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव, 11 अक्टूबर 2011 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित ''प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर वर्ष'' के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.-250404,

फोन नं.- (01233) 280184, 280994

Website : www.jambudweep.org

E-mail : jambudweeptirth@gmail.com

दशम संस्करण	वीर नि. सं. 2538, माघ कृ. 14	मूल्य
2200 प्रतियाँ	22 जनवरी 2012	24/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मरठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

–: निर्देशन एवं सम्पादक :–

स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण-1984 से षष्ठ संस्करण-2004 तक 23300 प्रतियाँ
सप्तम संस्करण-सन् 2008, प्रतियाँ-2200, अष्टम संस्करण-2200 प्रतियाँ
नवम संस्करण-सन् 2011, 2200 प्रतियाँ

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

मुद्रक-स्वस्तिक प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिसर्स, दिल्ली, मो.-08800274437

सम्पादकीय

-स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश
रवीन्द्रकीर्ति स्वामी

किसी कवि ने कहा है—

The Literature is the mirror of Society.

अर्थात् साहित्य समाज का दर्पण है। प्रत्येक व्यक्ति गतिशील है और नई-नई खोजों में विश्वास करता है। बड़े-बड़े पुराण ग्रंथों को पढ़ने का, चिन्तन-मनन का समय पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित आज के भौतिकवादी युग में किसी के पास नहीं है और अगर समय निकालकर प्रयास भी करें तो पुराणों की चीजें उनकी समझ से परे हो जाती हैं। ऐसे समय में यह आवश्यक है कि रोचक और सरल भाषा में औपन्यासिक शैली में लिखे गये साहित्य द्वारा उन्हें आगमसम्मत जानकारी प्रदान की जाए जिसे आज लोग रुचिपूर्वक पढ़ते हैं।

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, सुप्रसिद्ध लेखिका, चिन्तक एवं साधिका परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का सम्पूर्ण जीवन बाल्यावस्था से ही साहित्य जगत में व्यतीत हुआ। उन्होंने जहाँ न्याय, सिद्धान्त, व्याकरण, अलंकार, काव्य आदि के उच्चकोटि के वृहद् ग्रंथों का लेखन किया वहीं अपनी लेखनी द्वारा वर्तमान युग की रुचि को ध्यान में रखकर अनेक रोचक शैली के

लघु उपन्यासों में मानों आगम का सार ही उड़ेल दिया है।

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित उनके इन ग्रंथों ने विद्वत्वर्ग एवं जनसाधारण को अपनी ज्ञानगंगा में अवगाहन करवाकर नई दिशा प्रदान की है, उसी शृंखला में एक सारभूत कृति के रूप में यह 'आटे का मुर्गा' नामक पुस्तिका है जो अत्यन्त लघु होते हुए भी गागर में सागर के समान अपने में अपूर्व सार को समाहित करके पाठकों को सही दिशाबोध प्रदान करने में कुंजी के समान है। इसका सदुपयोग कर आप सब अहिंसा को अपने जीवन में हृदयंगम करें और महान पुण्य का संचय करते हुए क्रम से अपनी आत्मा का उत्थान करें, यही मंगल भावना है।

* * * *

प्रस्तावना

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

पंचपरिवर्तनशील संसार की भयावहपूर्ण स्थिति का दिग्दर्शन कराने वाला 'आटे का मुर्गा' नामक उपन्यास आपके हाथों में है। अनेक यातनाओं से पूर्ण जन्म-जन्मान्तरों की योनियों में भ्रमण का हेतु बलिप्रथा जैसे निंद्य कार्य की रोधक यह कृति है।

प्राचीन पुराण ग्रंथों में यशोधर चरित नामक कथानक का वर्णन किया गया है कि यशोधर राजा ने अपनी माता चन्द्रमती के आग्रह पर आटे के मुर्गे की बलि चढ़ाई थी जिसके परिणामस्वरूप माता चन्द्रमती एवं यशोधर दोनों ने तिर्यंच योनियों के असंख्य दुःखों को भोगा और स्वयं अपनी सन्तान के द्वारा बलि में अर्पित कर दिये गए। अरे! जब एक आटे के मुर्गे की बलि करने से उन्हें इतने दुःख उठाने पड़े तो जो लोग पंचेन्द्रिय जीव की बलि देते हैं वह अपनी गति और दुःखों की स्वयं कल्पना कर सकते हैं।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने उक्त पौराणिक कथा के आधार पर यशोधर के समस्त जीवनक्रम

एवं उनके परिवारजनों का चित्रण करते हुए सबके जन्म-जन्मान्तरों का औपन्यासिक शैली में विवेचन किया है। इस हृदयविदारक यशोधर चरित्र को पढ़कर निश्चित ही मानव मात्र के हृदय में अहिंसा की भावना जागृत होगी। यह एक सच्चा कथानक है। वर्तमान युग में हिंसा की भड़कती अग्नि को बुझाने के लिए ऐसे-ऐसे अहिंसात्मक कथानकों के प्रचार की अति आवश्यकता है।

आशा है इस कथानक को पढ़कर पाठकगण हिंसा पाप से डरते हुए अहिंसा धर्म को अपने जीवन में अपनाएंगे और वर्तमान साधनों का सदुपयोग करके भगवान महावीर के अहिंसामयी सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करेंगे।

* * * *

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान—टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि—आसोज सुदी १५ (शरदपूर्णिमा) वि. सं. १९९१, (२२ अक्टूबर सन् १९३४)

जाति—अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र**—गोयल, **नाम**—कु. मैना

माता-पिता—श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत—ई. सन् १९५२ में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा—चैत्र कृ. १, ई. सन् १९५३ को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम—क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा—वैशाख कृ. २, ई. सन् १९५६ को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती १०८ आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व—अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं २५० विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका। सन् १९९५ में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा "डी.लिट्." की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा—हस्तिनापुर में जंबूद्वीप तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण,

तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा—भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की ३१-३१ फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन १०८ फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा—पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से २१ दिसम्बर २००८ को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा—'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा—जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (१९८२ से १९८५), समवसरण श्रीविहार (१९९८ से २००२), महावीर ज्योति (२००३-२००४) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् १९७२ में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् १९७४ से हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं—

१. सन् १९७२ से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के माध्यम से लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।

२. सन् १९७४ से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।

३. सन् १९७४ से १९८५ तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।

४. सन् १९७४ से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है—कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना, नवग्रहशांति जिनमंदिर, तीन लोक रचना एवं श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की ३१-३१ फुट उत्तुंग प्रतिमाओं की स्थापना।

५. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग १५००० ग्रंथ संग्रहीत हैं।

६. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये करोड़ों णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।

७. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।

८. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।

९. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली कई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।

१०. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।

११. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।

१२. तीर्थंकर जन्मभूमियों की वंदना एवं धार्मिक फिल्मों का प्रदर्शन करने वाले थियेटर से समन्वित गणिनी ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य "नंद्यावर्त महल" तथा प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं भौतिक सुख की प्राप्ति करें।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत "वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला" की स्थापना सन् १९७२ में हुई। तब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रंथमाला से पाठकों को ग्रन्थ कम कीमत में प्राप्त हो सकें, इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् १९९० से प्रारंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

शिरोमणि संरक्षक

१. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली, दिल्ली-६।
२. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
३. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-१९, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
४. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
५. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
६. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
७. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-९२।
८. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
९. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
१०. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
११. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
१२. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-९२।
१३. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस्.
१४. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।

१५. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
१६. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
१७. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-४, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

परम संरक्षक

१. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
२. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, ७९२ विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
३. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
४. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
५. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
६. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
७. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
८. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
९. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
१०. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
११. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
१२. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
१३. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
१४. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
१५. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-७।
१६. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
१७. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
१८. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
१९. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., अमरचंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)

आज के मानव में कलियुग का रूप दिखाई देता है : काव्य रूपक

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी

तर्ज-एक थी राजुल.....

आज के मानव में कलियुग का, रूप दिखाई देता है।
राम की धरती पर रावण का, रूप दिखाई देता है।।आज के.।।

कहते हैं माँ की ममता, बच्चे पर सदा बरसती है।
कोई कह नहीं सके कि वह, बच्चे की हत्या करती है।।
लेकिन आज की माँ में नागिन, रूप दिखाई देता है।।आज के.।।१।।

सुना है कितना ही धन दे दो, किन्तु न प्राण कोई दे देगा।
क्योंकि प्राण के बदले मानव, दुनिया में क्या सुख देखेगा।।
लेकिन मानव बम में विष का, रूप दिखाई देता है।।आज के.।।२।।

देखो गौ माता बस तृण खा, मीठा दूध पिलाती है।
फिर भी कतलखाने में उन पर, छुरी चलाई जाती है।।
मानव में ही हत्यारों का, रूप दिखाई देता है।।आज के.।।३।।

खेत में खेती कर किसान, मेवा फल अन्न उगाता है।
कलियुग में नर अण्डा मछली, को कृषि कहकर खाता है।।
जिव्हा लोलुपता में उन्हें, सुख चैन दिखाई देता है।।आज के.।।४।।

तप संयम अध्यातम का, निर्यात जहाँ से हुआ सदा।
आज माँस निर्यात वहाँ से, करता मानव कलियुग का।।
इस भौतिक संपति में हिंसक, रूप दिखाई देता है।।आज के.।।५।।

अपने शील से सीता ने जहाँ, नीर बनाया अग्नी को।

आज की नारी फिल्मों में, कर रही प्रदर्शित अंगों को।।
अब सीता में सूपनखा का, रूप दिखाई देता है।।आज के.।।६।।

मातपिता की विनय जहाँ पर, जन्मघूंटि से मिलती है।
आज वहाँ भी उनको अपनों, की प्रताड़ना मिलती है।।
इस कलियुग के रिश्तों में, अपमान दिखाई देता है।।आज के.।।७।।

कलियुग में भी सतयुग का दर्शन चाहो हो सकता है।
एक कहानी से देखो, युगपरिवर्तन हो सकता है।।
इन्सानी भावों में प्रभु का, रूप दिखाई देता है।।आज के.।।८।।

देखो इक राजा ने सुन्दर, बड़ा सरोवर बनवाया।
उसको दूध से भरने हेतू, उसने ढिंढोरा पिटवाया।।
सभी दूध डालें उसमें, आदेश सुनाई देता है।।आज के.।।९।।

राजाज्ञा पाकर जनता ने, अपने हर्ष को दरशाया।
सबके सपनों में अब मानो, क्षीर का सागर लहराया।।
लेकिन एक व्यक्ति के मन में, खोट दिखाई देता है।।आजके.।।१०।।

सोचा उसने सभी दूध, डालें मैं तो जल डालूँगा।
पता किसी को नहीं लगेगा, चतुराई यदि कर लूँगा।।
रात्री में जल डाल के वह, संतुष्ट दिखाई देता है।।आज के.।।११।।

कलियुग का अभिशाप यह देखो, सबके मन में भी आया।
पानी डाल के दूध सरोवर, को देखना सबने चाहा।।
इसीलिए पूरा सरवर, जल भरा दिखाई देता है।।आज के.।।१२।।

चला देखने राजा खुश हो, दूध भरा सरवर अपना।
अपनी प्यारी प्रजा को लेकर, सोचा पूर्ण हुआ सपना।।
मात्र कल्पना करके वह, संतुष्ट दिखाई देता है।।आज के.।।१३।।

राजा पहुँचा निकट सरोवर, हक्का बक्का हुआ तभी।
लाल आँख करके मंत्री से, बोला आज्ञा क्यों न पली।।
बेचारे मंत्री में डर का, भूत दिखाई देता है।।आज के.।।१४।।

शीश झुका मंत्री बोला, राजन्! अब कलियुग आ ही गया।
कर न सकेंगे आप व मैं कुछ, मानो सतयुग चला गया।।
चिन्तायुत राजा-मंत्री में, क्रोध दिखाई देता है।।आज के.।।१५।।

चिन्तन कर राजा ने प्रजा पर, प्रेमपूर्ण दृष्टि डाली।
इस कलियुग को एक बार, सतयुग में बदल देने वाली।।
मानो अब जनता में पुनः, विश्वास दिखाई देता है।।आज के.।।१६।।

बोल पड़े सब एक साथ, राजन्! इक दिन का अवसर दो।
सरवर क्या हम दूध का सागर, भर देंगे चिन्ता न करो।।
फिर सबके मुख पर अद्भुत, संतोष दिखाई देता है।।आज के.।।१७।।

अब देखो उस राज्य में दूध का, भरा समन्दर लहराया।
बड़े-बड़े कलशों में दूध ले, सारा गाँव उमड़ आया।।
राजा देख सरोवर को, संतुष्ट दिखाई देता है।।आज के.।।१८।।

ढोल ढमाके बजे बहुत, राजा ने कहा यह सतयुग है।
अपनी करनी से कर सकते, हम कलियुग में सतयुग हैं।।
इसी धरा पर आज भी राम का, राज दिखाई देता है।।आज के.।।१९।

दुनिया वालों देखो! मानव, स्वयं ही रूप बदलता है।
खुद को चतुर मान करके, कलियुग को दोषी कहता है।।
इसमें तो ईमान का केवल, दोष दिखाई देता है।।आज के.।।२०।।

बंधुओं! अब आप कलियुग में भी कहीं-कहीं दिखने वाले सतयुग की बात सुनेंगे —

आज के कलियुग में भी सतयुग रूप दिखाई देता है।
जिनवर की प्रतिमा में प्रभु का रूप दिखाई देता है।।टेक.।।

भारत भूमी साधु-साध्वियों, के विचरण से धन्य सदा।
जिनवर के लघुनंदन मुनिवर शांतिसिंधु का जन्म हुआ।।
आज के सन्तों में भी वैसा, रूप दिखाई देता है।। आज के.।।२१।।

संत शृंखला में इक गणिनी, ज्ञानमती माताजी हैं।
जिनने इस कलियुग में भी, नारी शक्ती बतला दी है।।
तभी आज उनमें ब्राह्मी का, रूप दिखाई देता है।।आज के.।।२२।।

दिल्ली में चौबिस कल्पद्रुम, मण्डल एक बार रचवाया।
भक्ती की गंगा में भक्तों, को अवगाहन करवाया।।
इन्हीं अनुष्ठानों से सुख, सन्तोष दिखाई देता है।।आज के.।।२३।।

अन्तर्राष्ट्री ऋषभदेव, निर्वाण महोत्सव करवाया।
प्रधानमंत्री के द्वारा, उसका उद्घाटन करवाया।।
इस उत्सव में व्यसनमुक्ति, उद्घोष दिखाई देता है।।आज के.।।२४।।

तीर्थ हस्तिनापुरी अयोध्या, कुण्डलपुर उद्धार किया।
तीर्थंकर की जन्मभूमियों, का जग भर में प्रचार किया।।
इसीलिए तीर्थों पर नूतन, रूप दिखाई देता है।।आज के.।।२५।।

टी.वी. के माध्यम से सब, घर-घर में सुनते गुरुवाणी।
निज जीवन निर्माण हेतु, जन-जन के लिए जो कल्याणी।।
गुरु भक्ती का अब जनता में, जोश दिखाई देता है।।आज के.।।२६।।

ज्ञानमती माताजी ने अब, शांति वर्ष उद्घोष किया।
राष्ट्रपति प्रतिभा जी ने, उस ज्योति को उद्योत किया।।
तभी "चंदनामती" धरम का, शोर दिखाई देता है।।आज के.।।२७।।

आटे का मुर्गा

(१)

उज्जयिनी नगरी में चारों तरफ हर्ष और विषाद का वातावरण एक साथ दिख रहा है। महाराजा यशोध अपने पुत्र यशोधर का राज्याभिषेक महोत्सव सम्पन्न कर चुके हैं। उसके मस्तक पर अपना पट्टबंध रखकर स्नेह से भरे शब्दों में कह रहे हैं–

"बेटा यशोधर! जैसे मैंने अपने पिता यशबंधुर के दिए हुए राज्य का विस्तार किया है और प्रजा का पुत्रवत् पालन किया है, वैसे ही तुम भी इस राज्य को वृद्धिंगत करते हुए प्रजा को पुत्रवत् समझो। तुम चारों वर्णों पर त्रयी विद्या के द्वारा अनुशासन करना, दुष्टों को दण्डनीति से दण्डित करना, अर्थशास्त्र के द्वारा धन संचय करना, सातों व्यसनों से दूर रहना, क्रोध, मान, माया और लोभ इन कषायों के आश्रित नहीं होना और मेरे ही समान अंत में अपने पुत्र

को राज्य देकर जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर लेना।"

इतना कहकर विनय से चरणों में नम्र हुए पुत्र को पुनः-पुनः आशीर्वाद देकर राजा यशोध रानी चंद्रमती को जैसे-तैसे समझाते-बुझाते हैं पुनः अपने मंत्रीवर्ग आदि प्रमुख लोगों से क्षमा याचना करके घर से निकल वन में जाकर गुरु के चरण-सानिध्य में जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं।

महाराज यशोधर को प्राप्त करके भी प्रजा में विषाद इस बात का हो रहा है कि जिन्होंने हमें पिता का प्यार दिया था हमारे सुख में सुखी और दुःख में दुःखी हुए थे आज वे हमारे रक्षक महाराज यशोध संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होकर वन की ओर जा रहे हैं। हर्ष का वातावरण इसलिए उमड़ रहा था कि हमारे नवयुवक महाराज यशोधर सर्वगुण सम्पन्न हैं और पिता के समान ही प्रभावशाली हैं।

राजा यशोधर भी न्यायनीति में पूर्ण कुशल हैं। दुर्जनों की संगति से दूर रहते हैं। भरी जवानी में भी विषयों के आधीन नहीं हैं। वे मात्र विनोद के लिए अपनी रानियों के साथ काम-क्रीड़ा करते हैं। क्रोधादि अंतरंग शत्रुओं का दमन करने में निष्णात हैं। मंत्र, विग्रह, संधि, यान, स्थान, संशय और द्वैधीकरण ये सब राजनीति के गुण उनमें स्फुरायमान हो चुके हैं।

शत्रु राजा उसके नाम से काँपने लगते हैं। वे पहले से ही आकर भेंट समर्पण कर उनकी आज्ञा शेषा के समान मस्तक पर धारण कर लेते हैं और राजा के स्नेह को प्राप्त कर सुख से जीवन

यापन करते हैं। कुछ-कुछ शत्रु मान के वश से यदि उनके निकट नहीं आते हैं, तो वे पलायन कर वन में निवास बना लेते हैं और कोई यदि युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं तो अंत में पराजित होकर अपने सुख-वैभव से हाथ धो बैठते हैं। महाराज यशोधर रानी अमृतादेवी के गुणों से अधिक आकर्षित रहने से उन्हें महादेवी का पट्ट बांध देते हैं।

महारानी अमृतादेवी भी यथा नाम तथा गुण के अनुसार अमृत की निर्झरिणी ही प्रतीत होती हैं राजा के मन को अपने प्रेमपाश में बांधने के लिए चतुर हैं। उनकी मधुर वाणी, कटाक्ष-विक्षेप, हावभाव, विलास आदि लीलाएं धीरे-धीरे राजा को इतना अधिक खींच लेती हैं कि राजा अपने राजकाज से भी उदासीन होकर रानी के साथ ही अपना समय अधिक बिताने लगते हैं। सुयोग्य पुत्र यशोमति को राज्यभार संभालकर आप निश्चिन्त होकर रानी के साथ मनोविनोद करते रहते हैं। ऐसे ही आनन्दपूर्वक भोग सुखों का अनुभव करते हुए बहुत कुछ समय व्यतीत हो जाता है।

(२)

महाराज यशोधर का अन्तःपुर आठतलों से सुन्दर दिख रहा है। उसका शिखर मणियों से जड़ा हुआ चमक रहा है और सारे शहर भर में अपनी आभा बिखेर रहा है। राजमहल की पहली भूमि शुद्ध स्फटिक मणि से बनी हुई है जो कि आकाश के सदृश है अथवा राजा यशोधर के पवित्रगुणों के सदृश उज्ज्वल है। दूसरा

तल मोतियों से जड़ा हुआ है जो ऐसा मालुम पड़ता है मानो मालती के पुष्पों का उपहार ही समर्पित किया गया है। तीसरे तल में पद्मराग मणियाँ लगी हुई हैं जो अपनी काँति से उगते हुए सूर्य के समान लाल-लाल दिख रही हैं। चौथे तल में मरकतमणि की फर्श बनी हुई है, जिसे देखकर ऐसा लगता है कि हरे-हरे पंखो वाले तोतों ने अपनी सारी सुषमा यहीं लाकर इकट्ठी कर दी है। पाँचवे तल की भूमि इंद्रनील मणियों से निर्मित की गई है। छठे तल में मूंगे के पुँजों से भूमि का निर्माण इतना सुन्दर दिख रहा है कि मानों विश्वकर्मा ने स्वयं ही इसकी रचना की है। सातवीं भूमि पद्मराग मणियों से बनी हुई है और वहाँ सुवर्ण के बनाये तोते, हंस और मोर आदि उत्तम कारीगरी के साथ बैठाये गये हैं, जो कि जीवित जैसे प्रतीत हो रहे हैं। ऊपर चढ़ कर 'गृहचक्रा' नाम की आठवीं भूमि है जो चन्द्रकान्त शिलारत्नों से देदीप्यमान है।

एक समय रात्रि के प्रथम प्रहर में महाराज यशोधर अमृतादेवी का स्मरण करते हुए अपने महल की शोभा को कुछ विशेष उत्कण्ठा से देखते हुए क्रम से सातों तलों को पार कर आठवीं भूमि में पहुँच जाते हैं और एक क्षण के लिए उन्हें ऐसा लगता है कि मानों मैं "ईषत्प्राग्भार' नाम की आठवीं पृथ्वी में ही आ गया हूँ अर्थात् सिद्धलोक में ही आ गया हूँ। परन्तु पता नहीं क्यों अगले ही क्षण में उनका हृदय धड़कने लगता है मानों कोई आगन्तुक संकट की सूचना ही दे रहा हो।

राजा मन ही मन सोच रहे हैं—

"ओह! मैं आठवीं पृथ्वी पर आ गया हूँ फिर भी मेरा कर्म मल नष्ट नहीं हुआ है। मैं कामदेव के द्वारा सताया गया हूँ। मेरा सारा शरीर पसीने के बहाने से गृहिणी के स्नेह से सिंच रहा है।"

महाराज अपनी महारानी के आँगन की तरफ बढ़ते हैं कि सुवर्ण की डण्डी हाथ में लिए एक प्रतिहारिनी दासी सामने आकर महाराज को नमस्कार कर कहती है—

"महाराजाधिराज की जय हो, जय हो,"

महाराज आगे बढ़कर अन्दर कमरे में प्रवेश करते हैं। महारानी अमृतामती उनका स्वागत करती हैं। महाराज शय्या पर आरूढ़ हो जाते हैं, रानी भी पास में बैठकर सरस, मधुर वार्तालाप, मंद मुस्कान आदि से राजा का मन प्रसन्न कर रही हैं। कुछ क्षण में ही वे दम्पति एक दूसरे के प्रेमपाश में बँधकर कामसुख का अनुभव कर रहे हैं। उस समय राजा अपनी प्राणवल्लभा के सामने स्वर्ग की देवांगनाओं को और देवों के सुख को भी तुच्छ समझ रहे हैं। अर्द्धरात्रि व्यतीत हो जाने पर महाराज को निद्रा आ जाती है।

रानी महाराज को गाढ़ निद्रामग्न समझ लेती है, तब धीरे से उनकी भुजाओं से अपनी भुजाओं को अलग करके उठ बैठती है। धीरे से शय्या से नीचे उतर कर दबे पाँव कमरे से बाहर निकल जाती है। महाराज यशोधर की नींद खुल जाती है और तब वे सोचने लगते हैं—

'यह रानी मेरी भुजपाशों से निकलकर अर्धरात्रि में भला कहाँ जा रही हैं?"

हाथ में नंगी तलवार लेकर महाराज यशोधर बहुत ही दबे पैरों से रानी के पीछे-पीछे चल देते हैं। वह रानी जल्दी-जल्दी सीढ़ियों से उतर कर आठ तल के महल से नीचे आकर नौकरों के निवास की तरफ चली जाती है। वहाँ एक कमरे में प्रवेश करती है। महाराज यशोधर कमरे के बाहर ही एक तरफ छिपकर खड़े होकर सारा दृश्य देख रहे हैं। वह एक कुबड़े के पास पहुँचती है।

वह कुबड़ा अग्नि से जले हुए वृक्ष के सदृश दिख रहा है, मुख में बड़े-बड़े दाँत निकले हुए हैं, आँखों में कीचड़ भरा हुआ है, टेढ़ी-मेढ़ी हड्डियों से युक्त उसका शरीर बहुत ही बेढ़ंगा और निंद्य दिख रहा है। उसके पैर छितरे-बितरे हैं, घुटनों के समान ही उसकी काठि मांसहीन है, वक्षस्थल सकड़ा है और हृदय की हड्डी कठोर है, वह अपने विरल और कपिल केशों से विकराल दिख रहा है। वह दूसरों के जूठन का घोल पी, दूसरों की मार को सहने का अभ्यस्त और दूसरों के उतारे हुए जूते पहनने वाला ऐसा एक निकृष्ट किंकर है।

इस अर्द्धरात्रि में वह गहरी नींद सोया हुआ है और जोर-जोर से भयंकर खर्राटे भर रहा है। महारानी जी वहाँ पहुँचकर उसके चरणों के समीप बैठकर धीरे-धीरे चरण सहला कर उसे जगाती हैं। वह कुबड़ा जगकर ताड़ना करता हुआ कहता है—

'अरे अरे दुष्टे! दासीपुत्री! तू जल्दी क्यों नहीं आई?'

इस प्रकार भर्त्सना करते हुए रानी को मारता है पुनः उसकी चोटी पकड़ कर उसके कोमल गाल पर जोरों से एक तमाचा

लगाता है। हूँकार भरकर रानी की कमर में एक लात जमा देता है। इस पर भी रानी उसके चरणों में प्रणाम करती हुई कहती है—

'हे प्राणनाथ! मैं तो अपने गृहवास से तंग आ गई हूँ। मेरे तो आप ही पूज्य हैं, कामदेव हैं और मेरे हृदयहारी स्वामी हैं। हे देव! आपके बिना मेरे ये छत्र, चमर, सतखण्डे-महल, घोड़े-हाथी, उत्तम रथ, नाना प्रकार के आसन, दिव्य-भूषण-वसन आदि सभी वस्तुएँ मुझे अग्नि के सदृश जलाती रहती हैं।

तब कुबड़ा झिड़ककर बोलता है—

"बस, बस रहने दे। राजा के साथ भोग भोगने में तुझे जो आनन्द आता है सो मेरे साथ भोगों में कहाँ आयेगा? जभी तो तू उन्हीं को खुश करने में लगी रहती है।"

"हे प्राणवल्लभ! मैं सच कहती हूँ मुझे राजा का समागम धधगते हुए अँगारे के समान संतापकारी लगता है। परन्तु क्या करूँ.....ओह! विधाता को जब मुझे तुम्हारी पत्नी नहीं बनाना था तो मुझे जन्मते ही क्यों नहीं खतम कर दिया था? जो मैं इस समय कुछ क्षण भी आपके बिना जी रही हूँ सो मैं अपने पूर्वसंचित दुष्कर्मों का कर्जा ही चुका रही हूँ। यदि राजा यशोधर इस समय मृत्यु को प्राप्त हो जाए तो मैं हर्ष से नृत्य करूँगी तथा नैवेद्य, माँस और मधु से कात्यायनी देवी की पूजा करूँगी।"

इतना कहकर रानी कातरमुद्रा से उस कुबड़े की ओर देखने लगती है और प्रसन्नता की अपेक्षा करने लगती है। तब वह कुबड़ा जोर-जोर से हँसने लगता है और रानी का हाथ पकड़कर खींचकर

गाढ़ आलिंगन कर लेता है। फिर दोनों ही परस्पर में एक-दूसरे के प्रति इतने अधिक आसक्त हो जाते हैं कि मानों फिर पुनः क्षण भर के लिए भी अलग न हो जायें। बहुत देर तक कामभोगों को भोगते हुए जब पसीने से तर-बतर हो जाते हैं तब एक-दूसरे से अलग होकर कुछ क्षण तक प्रेम से संलाप करने लगते हैं। रानी के मन में यह चिंता हो जाती है कि अब राजा के जागृत होने का समय निकट आता जा रहा है अतः जैसे-तैसे कुबड़े को शाँतकर पुनः जल्दी-जल्दी आने का आश्वासन देने लगती है।

इधर छिपकर खड़े हुए महाराजा यशोधर के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रह जाता है, वे बार-बार सोचने लगते हैं—

"मैं यह क्या देख रहा हूँ.....कुछ क्षण बाद जब दोनों को व्यभिचार में तन्मय हुआ देखते हैं तब उनके क्रोध का वेग बढ़ जाता है और वे तलवार को हाथ में उठाते हैं तथा दोनों को एक बार में ही खत्म करने के लिए तैयार हो जाते हैं। उसी क्षण उनके मन में विचार आता है—

"अरे! मैंने जिस खड्ग से शत्रुओं के सैन्य का विध्वंस किया है उससे अब कापुरुष के समान क्या स्त्री का हनन करूँ?

"नहीं, नहीं.....मेरी यह तलवार क्षत्रिय वीरों का गला काटती है न कि ऐसे निकृष्ट किंकर का और ऐसी व्यभिचारिणी स्त्री का?"

ऐसा विचारकर राजा अपनी तलवार को नीची कर लेते हैं और भड़कती हुई क्रोध की ज्वाला को क्षमारूपी जल से शांत कर

लेते हैं। जब रानी वहाँ से आने को उत्सुक दिखाई देती है तब वे उसके पहले ही वहाँ से चलकर अपने कमरे में आकर लेट जाते हैं। यद्यपि उन्हें नींद आती नहीं है फिर भी निद्रा में सोये हुए के समान आँख बंद कर लेते हैं और गहरे विचारों में डूब जाते हैं।

"ओह! यह मेरी भुजाओं के आलिंगन से (नहीं) तृप्त होती हुई इस कुबड़े में कैसे आसक्त हो गई? हाय, हाय!! इसने एक भी बात न सोची? न इसे अपने श्रेष्ठ कुल का ध्यान रहा, न अपनी राज्य लक्ष्मी का मान/भाव रहा, न इसने मुझे ही कुछ गिना और न अपने पुत्र का ही कुछ संकोच किया। ओह!.....इसकी बुद्धि ऐसी भ्रष्ट हो गई? क्या सचमुच में ऐसी उच्च घराने की महिलाएं भी ऐसा निंद्य कुकृत्य कर सकती हैं?.....सच ही है सहारा देने योग्य ऐसे आम के वृक्ष पर चढ़कर भी लता नीचे की ओर लटक जाती है और किसी अन्य ही हीन जाति के कंटीले और रूखे झाड़ों का चुंबन करने लगती है।" राजा यशोधर स्त्रियों की दुष्प्रवृत्ति और मायाचारी का चिंतवन कर रहे हैं। इधर रानी धीरे-धीरे आकर पति को सोया हुआ समझ कर उसी शय्या पर लेट जाती है और कुछ ही देर बाद निद्रा में निमग्न हो जाती है किन्तु महाराज को नींद कहाँ है? उन्हें उस समय उस दुष्ट स्त्री का स्पर्श विषैली नागिन से अधिक भयंकर प्रतीत हो रहा है। धीरे-धीरे स्त्री चरित से मन हटाकर संसार, शरीर और भोगों की निस्सारता का विचार करने लगते हैं—

"यह संसार असार है आज जिसको मैं शत्रु समझ रहा हूँ

पता नहीं वह कितनी बार हमारा मित्र, पुत्र, माता-पिता हो चुका हो। जिसे हम आज अपना मित्र समझ रहे हैं वह भी अनंत बार शत्रु के रूप में हमारा अप्रिय दुःखदायी हो चुका होगा। इस संसार में यदि सार है तो एक दयामयी धर्म ही है और यदि कोई शत्रु है तो ये क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि ही हैं। यह शरीर अत्यन्त अपवित्र है, इसे चाहे जितना धोओ, सुगंधित वस्तुओं का लेप करो, उत्तम-उत्तम पदार्थों का भक्षण करो, चाहे जितना सुख पहुँचाओ। परन्तु यह दुःखों की खान है हमेशा इससे मल झरता रहता है और यह नियम से नष्ट होने वाला ही है। एक क्षण का भी इसका भरोसा नहीं है फिर भी पता नहीं क्यों मूढ़ प्राणी इसके अधीन होकर अपनी आत्मा को कैसे भूल जाते हैं? अहो! इस नश्वर शरीर से ही शाश्वत आत्मा को प्राप्त किया जा सकता है। इस अपवित्र शरीर से ही रत्नत्रय स्वरूप आत्मा तीनों लोकों में पवित्र और पूज्य बनाई जा सकती है। अतः इस शरीर को रत्नत्रय की सिद्धि का साधन बना लेना ही उचित है। ये इन्द्रियों के भोग विष से भी अधिक भयंकर हैं। विष तो एक बार ही प्राणों का घात करता है परन्तु ये विषयभोग भव-भव में दुर्गतियों में अनन्त दुःखों का अनुभव कराते हैं। अरे! इस क्षणिक, सरसों के सदृश लघु और तुच्छ इंद्रिय सुखों के लिए मोही प्राणी अनंत-अनंत दुःखों को मोल ले लेते हैं।"

इस प्रकार से वैराग्य भावना का चिंतवन करते हुए महाराज आगे का निर्णय कर रहे हैं—

"मैं प्रातः काल ही इस राजधानी, परिजन तथा राज्यलक्ष्मी को छोड़कर वन का आश्रय लूँगा। जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर तप करूँगा, मुनिव्रतों को पालन करते हुए अपनी आत्मा को संसार के प्रपंच से, दुःखों से मुक्त करूँगा।'

इधर महाराज ऐसा चिंतवन कर रहे हैं उधर सूर्य अपनी लालिमा फैलाता हुआ उदित हो रहा है। प्रभात के समय होने वाली मंगल वाद्यों की ध्वनि और चारणजनों के प्रभाती-गीत को सुनते हुए राजा उठकर बैठ जाते हैं। यद्यपि वे पूर्णतया विरक्त हो चुके हैं फिर भी मन ही मन सोचने लगते हैं —

यदि मैं सुगंधित उबटन लगाकर स्नान नहीं करूँगा, यदि मैं उत्तम-उत्तम वस्त्रों को, आभूषणों को धारण नहीं करूँगा और यदि मैं प्रतिदिन के समान प्रसन्नचित्त होता हुआ राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ नहीं होऊँगा, तो यह अमृतामती मेरी उदासीनता को देखते ही समझ जायेगी कि महाराज को मेरा कुकृत्य विदित हो गया है फिर पता नहीं वह क्या अनर्थ कर सकती है? अथवा मेरे प्राणों पर भी संकट ला सकती है? इसलिए मुझे कुछ न कुछ युक्ति से ही काम लेना चाहिए।'

ऐसा निश्चय कर महाराज यशोधर हमेशा के समान ही स्नान आदि से निवृत्त होकर आभूषणों को धारण कर लेते हैं। यद्यपि सर्व शृंगार वस्त्राभरण उस समय उन्हें अग्नि की ज्वाला के सदृश लगते हैं। फिर भी वे अंदर की बात अंदर ही रखते हुए ऊपर से सबको अपनी प्रसन्नता दिखा रहे हैं।

(३)

महाराज यशोधर स्वर्णमय राज्यसिंहासन पर आसीन हैं। दोनों ओर से चँवर ढुराये जा रहे हैं। सभामंडप में कुबड़े और बौने कौतुककारी नृत्य कर रहे हैं। वीणा, बांसुरी और गीतों की ध्वनि हो रही है। बंदीजन स्तुति गान कर रहे हैं। सामंत और मंत्रीगण सभाभवन में अपने-अपने स्थान पर बैठे हुए हैं। कुछ राजा-महाराजा आए हुए हैं जो यथायोग्य भेंट समर्पित कर राजा के द्वारा संकेतित आसनों पर बैठ चुके हैं। कुछ क्षण बाद नृत्य-संगीत का कार्यक्रम समाप्त हो जाता है और वहीं पर सभाभवन में पुरोहित लोग सरस पुस्तकवाचन प्रारंभ कर देते हैं, सभी सभासद लोग मंत्रमुग्ध से बैठे हुए सुन रहे हैं किन्तु महाराज के मन की विक्षिप्तता बढ़ती चली जा रही है। थोड़ी देर बार महाराज अपनी माता के महल की ओर जाते हैं। उन्हें साष्टांग प्रणाम करते हैं। माता चन्द्रमती भी पुत्र यशोधर को बार-बार आशीर्वाद देते हुए नहीं अघाती हैं। महाराज माता के निकट ही यथोचित आसन पर बैठ जाते हैं और कुशलवार्ता के अनंतर अपने मन की बात को मन में ही छिपाकर युक्ति से अपना अभिप्राय निवेदन करते हैं —

'हे मातः ! आज रात्रि में मैंने कुछ अशुभ स्वप्न देखा है। मैं उसे सुनाना चाहता हूँ।'

माता एकदम घबड़ाने लगती हैं और काँपते स्वर से पूछती हैं—

'कहो बेटा ! वह स्वप्न क्या है?.....

यशोधर कहते हैं—

"मातः! मैं बहुत ऊँची अट्टालिका से नीचे गिर गया हूँ। वहाँ पर विकराल दाढ़ वाले योद्धा को देखा है जो कि हाथ में दण्ड लिए हुए है और साक्षात् यमराज के समान भयंकर दिख रहा है। हे जननि! उसने कहा कि 'तू शीघ्र ही जिन मुद्रा से युक्त ऐसी दीक्षा ग्रहण कर ले नहीं तो मैं तुझे समस्त परिग्रह सहित आज ही खा जाऊँगा। इतना सुनकर मैंने भी स्वप्न में ही अपना शिर मुँडा लिया और दीक्षित हो गया। इसलिए हे अम्ब! मेरे पुत्र यशोमति को राज्य सिंहासन पर स्थापित किया जाये और मैं अब दीक्षा लेना चाहता हूँ।"

यशोधर के शब्दों को सुनते ही माता का हृदय आहत हो जाता है। वह सोचने लगती है—

"ओह! पति ने पहले ही मुनिदीक्षा ले ली है और अब यह महागुणशाली पुत्र भी दीक्षा के सन्मुख हो रहा है। पति और पुत्र दोनों से विमुक्त होती हुई मैं इस विशाल राज्यसुख का क्या अनुभव करूँगी? यशोमति अभी बालक है।.....'

कुछ क्षण सोच विचार कर माता समझाते हुए कहती हैं—

'हे कुलदीपक! हे सुपुत्र! तुम ध्यान देकर मेरी बात सुनो और इस दुःस्वप्न की शांति का उपाय करो। बेटा! अपनी कुलदेवी है जो सब आशाओं की पूर्ति करती है और बड़े-बड़े संकटों का निवारण करने में समर्थ है। इसलिए उस देवी के समक्ष नाना जाति के जीवों की बलि की जाये कि जिससे आगंतुक संकट टल जायेगा

और सब कुछ आनंद मंगल हो जायेगा।'

माता के वचनों को सुनते ही महाराज यशोधर काँप उठते हैं और करुणा से आर्द्रवचनों में कहते हैं—

'हे पूज्य मातः! प्राणियों का वध करना महापाप है। भला अन्य जीवों को दुःख देकर कभी सुख मिल सकता है? अरे! मातः! तुम प्राणि हिंसा के विचार को कभी मन में भी मत लावो। देखो, किसी के बालक का वध करके कोई अपने प्राणों की रक्षा कर सकता है क्या? अरे! भव-भव में वह नरकों में दुःख उठाता है और भव-भव में उसी प्राणी के द्वारा मारा जाता है कि जिसको उसने एक बार ही मारा था।'

माता कहती है—

'बेटा! परम्परा से अपने घर में देवी की पूजा होती चली आई है और देवी तो बलि से ही प्रसन्न होती हैं। अतः बलि में की गई हिंसा दोष करने वाली नहीं है। प्रत्युत सर्वविघ्नों का संहार करने वाली है। ऐसा ही अपने कुल पुरोहितों ने बतलाया है।'

यशोधर कहते हैं—

'मातः! यह बलिप्रथा महानिकृष्ट है। मांसाहारी पापियों द्वारा कल्पित है। देवी पशुबलि से तुष्ट हों ऐसी बात मिथ्या है। उनके लिए फल, फूल, नैवेद्य चढ़ाना चाहिए। बलि में भी जीववध दुर्गति को ले जायेगा ऐसा दयामयी अर्हंतदेव के शासन में कहा गया है। अतः हे मातः! मैं अपने दुःस्वप्नों की शांति के लिए जीवबलि किसी भी हालत में नहीं कर सकता हूँ। मुझे मरना मंजूर है किन्तु

हिंसा करके अन्य जीवों की बलि चढ़ाकर जीवित रहना मंजूर नहीं है। मातः ! इस संसार में राजा ही प्राणिसमूह के रक्षक माने गये हैं और यदि वे ही जीवों का वध करने लग जायें तो उनका रक्षक कौन होगा? इसलिए हे अम्ब ! मैं इस हिंसा कर्म में कथमपि प्रवृत्ति नहीं करूँगा। किन्तु अपना घात स्वयं ही कर लूँगा।'

इतना कहकर महाराज यशोधर म्यान से तलवार खींच कर अपनी गर्दन पर चलाने को उद्यत होते हैं कि सहसा माता हाहाकार करती हुई सामने दौड़ती है और निकट में स्थित हुए सामन्त आदि राजा को ऐसा करने से रोक लेते हैं। पुनः माता कहती हैं—

"हे पुत्र ! तुम शान्त होवो और मेरी अच्छी बात सुनो ! यदि तुम सचेतन जीव का बलिदान नहीं देना चाहते हो तो न सही, अन्य अचेतन जीव का ही बलिदान कर दो जो वह प्रहार की वेदना का अनुभव न करें।"

इतना सुनकर महाराज अपनी आँख बंद कर चुप रह जाते हैं तब माता 'मौनं सम्मति लक्षणं" सूत्र के अनुसार पुत्र की स्वीकृति समझकर प्रसन्न हो जाती है और गद्गद् स्वर में कहती हैं—

"हे यशस्वी पुत्र ! एक आटे का मुर्गा बनाकर उसकी बलि देने से न तो हिंसा होगी और न पाप ही लगेगा किन्तु देवी प्रसन्न हो जावेगी।"

महाराज सोच रहे हैं—

"यद्यपि यह बलिकर्म भी अधर्म ही है फिर भी अब मैं क्या करूँ?.....खैर ! जो भी हो, अब मैं इस जन्मदात्री माता की

इच्छानुसार जो भी यह कहे सो कर दूँ पुनः उसके विपरीत स्वप्न के बहाने से दीक्षा ग्रहण कर लूँगा।"

माता प्रसन्न होकर लेपकार को बुलवाकर आटे का सुन्दर मुर्गा बनाने का आदेश देती हैं। वह लेपकार बहुत ही थोड़े समय में आटे का अचेतन मुर्गा बनाकर ले आता है। माता उसे देखती है वह ऐसा दिख रहा है कि मानों चल रहा है, फड़फड़ा रहा है, उड़ रहा है और आगे बढ़ रहा है। जब राजा आदि लोग आकर उसे देखते हैं तब एक क्षण के लिए संदेह में पड़ जाते हैं। महाराज विचार करने लगते हैं—

"अहो ! यह मुर्गा अचेतन?' पुनः अच्छी तरह निरीक्षण कर निर्णय कर लेते हैं कि यह अचेतन ही है और कलाकार की कला पर आश्चर्य प्रगट करने लगते हैं। इधर माता अपने सभी परिवार के साथ महाराज यशोधर को आगे करके चण्डिकादेवी के मंदिर में पहुँचती हैं। पुरोहित के द्वारा कराई गई विधि के अनुसार माता, यशोधर और सभी परिवार के लोग मिलकर उस मुर्गे की नाना प्रकार के फूलों से पूजा करते हैं, दही और चन्दन के लेप से उसका अर्चन करते हैं ओर पटह, शंख, ढोल, तबला, नगाड़े आदि नाना प्रकार के बाजे बजने लगते हैं। बस बाजों की ध्वनि और पुरोहित के मंत्रोच्चारण के साथ-साथ देवी के आगे मुर्गे को खड़ाकर उसके गर्दन पर तलवार का वार करके उसकी बलि कर दी जाती है। उसी समय माता चन्द्रमती उस मुर्गे पर कुँकुम का घोला हुआ जल छोड़ती है और उसे बहता हुआ रुधिर मानकर

देवी संतुष्ट हो जाती है। माता की आज्ञानुसार महाराज यशोधर देवी के सामने हाथ जोड़कर निवेदन करते हैं—

"हे देवि! तेरी ही कृपादृष्टि से लोग संताप से मुक्त हो जाते हैं। अतः हे सुरेश्वरि! तू इस बलिकर्म से मुझ पर संतुष्ट हो और मुझे जंघाबल, बाहुबल एवं अचल जीवन प्रदान कर। हे मातेश्वरि! मुझे गृहस्थ जीवन की दुस्तर विपत्तियों से बचा और मेरी सब प्रकार से रक्षा कर।"

इस प्रकार निवेदन करते हुए महाराज कुछ क्षण के लिए स्तब्ध हो जाते हैं और सोचने लगते हैं।

"हाय! मैं यह क्या कर रहा हूँ ? मुझे इस अचेतन मुर्गे के मारने से पाप लगा है या पुण्य? क्या इस बलिक्रिया से मुझे आत्मिक शांति मिल सकेगी?

इधर माता चन्द्रमती अपने पुत्र को ब्राह्मण व्रत में दीक्षित कर उसे पुनः समझाते हुए कहती हैं—

"बेटा यशोधर! अब तुम भी इस मुर्गे के पिंड को देवी का प्रसाद मानकर भक्षण करो।"

माता की आज्ञा से महाराज यशोधर और सभी लोग भी उस मुर्गे के आटे को मांस-पिंड समझकर और देवी का महाप्रसाद मानकर भक्षण करते हैं। माता स्वयं भी उस पिंड को बड़े आदर से भक्षण करती है। तत्पश्चात् सभी लोग उस भयदायिनी कात्यायिनी देवी को नमस्कार करके अपने घर आ जाते हैं और इधर महाराज यशोधर चिंतासागर में निमग्न हो जाते हैं।

(४)

महाराज यशोधर अगले दिन ही अपने पुत्र यशोमति को अपने राज्य पद पर स्थापित कर देते हैं पुनः अपने मन में विचार करते हैं—

"अब मैं वन में जाकर जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करके तत्पश्चरण करूँगा। अहो! इस असार संसार में कौन किसकी माता है? और कौन किसकी पत्नी है? कौन किसका पिता है? और कौन किसका पुत्र है? जहाँ पत्नी व्यभिचारणी हो और माता बलिकर्म का—हिंसा का उपदेश देती हो वहाँ आत्मा को शाँति कैसे मिल सकती है?...'

यशोधर महाराज ऐसा विचार कर ही रहे हैं कि उधर महारानी अमृतामति को समाचार मिल जाता है कि महाराज ने यशोमति पुत्र को राज्यभार सौंप दिया है। वह सोचने लगती है—

"राजा के द्वारा जो यह राज्य त्याग किया गया है उसमें कुछ रहस्य अवश्य है? हो सकता है इसने गत रात्रि में मेरी कुबड़े जार के साथ क्रीड़ा देख ली हो? अन्यथा अकारण ही यह इतने विशाल राज्य वैभव को अपने प्रिय सामन्तों, मंत्रियों को और नाना भोगों को छोड़कर तपश्चरण करने की भावना क्यों करता? निश्चित ही इस राजा का मन उद्विग्न दिख रहा है, इसके भावों की विरक्तता इसके मन के आघात को सूचित कर रही है। क्योंकि 'वक्त्रं वक्ति हि मानस' सूक्ति के अनुसार इसके मुख की उदासीनता ही इसके मनोभाव को बता रही है।.....यदि वह कदाचित् मुनि नहीं भी बना तो फिर यह मुझे अवश्य ही दण्डित करेगा।"

पुनः रानी कुछ क्षण बाद सोचती है—

"अहो! इसने दुःस्वप्न के बहाने से जो अपनी माता के सामने दीक्षा के भाव व्यक्त किए थे, बस! उसी में कुछ रहस्य था। सचमुच में इसने मेरे कुकर्म को जान लिया है।.....अब हमें कुछ न कुछ उपाय करके इसका काम तमाम कर देना चाहिए।"

इस प्रकार से नाना विचारों में उलझी हुई रानी महाराज यशोधर के निकट आती है और घबराई हुई होकर पूछती है—

'हे नाथ! आपने अपने सुपुत्र यशोमति को राज्यभार सौंप दिया है क्या यह सच है? प्राणेश्वर! क्या आप वन में प्रवेश करना चाहते हैं? कहो, कहो, जल्दी कहो, आपने अकस्मात् यह क्या सोच लिया है?"

उस कुलटा देवी को सामने देखते ही महाराज के हृदय में धड़कन होने लगती है फिर भी वे गंभीर मुद्रा में बोलते हैं—

'देवि! अपने अनिष्ट की सूचना देने वाले मुझे कुछ खोटे स्वप्न हुए थे जिनकी शांति के लिए यद्यपि मैंने कल चंडीदेवी की पूजा की है फिर भी पता नहीं क्यों मुझे मानसिक शांति नहीं है। भावी अनिष्ट की आंशका से मेरा हृदय काँप रहा है। अतः हे प्रिये! अब मैं जल्दी ही वन में जाकर मुनिव्रत धारण करूँगा कि जिससे मेरी सम्यक् समाधि हो और मेरा परलोक उत्तम होवे।"

रानी कृत्रिम भावों को प्रदर्शित करती हुई कहती है—

"स्वामिन्! अभी आपकी दीक्षा का समय नहीं है। भरी जवानी में भोगों को छोड़कर यह तपश्चरण का उपक्रम कैसा? अहो! आपका यह सुकोमल शरीर क्या जंगल के कष्टों को सहन

कर सकेगा?'

राजा कहते हैं—

'देवी! बहुत कहने से क्या? अब मैंने जो निर्णय ले लिया है वह अटल है अब मैं अपने इस कोमल शरीर को तपश्चर्या की अग्नि में ही सुखाऊँगा और अपनी आत्मा के समरस आनन्द का अनुभव करूँगा।'

अमृतामती अच्छी तरह से यह समझ लेती है कि अब यह घर में रहने वाला नहीं है पुनः कुछ उपाय सोचकर अश्रु गिराते हुए कहती है—

'हे देव! मैंने आपके कल्याण के लिए कुछ विचार किया है। अतः हे प्राणनाथ! कल के कुलदेवी की पूजा के बचे हुए प्रसाद को सभी को खिलाने के लिए आज मैंने समस्त अंतःपुर के भोजन की व्यवस्था कराई है। यह प्रीतिभोज सम्पन्न हो पुनः हम दोनों ही उस कुलदेवी के प्रसाद का भक्षण कर एक साथ दीक्षा ग्रहण करेंगे। नाथ! आपके बिना मैं एक क्षण भी प्राणों को धारण नहीं कर सकती हूँ। क्या कुलवती स्त्रियाँ पति के बिना रह सकती हैं? अतः मैं भी आपके साथ ही वन में प्रवेश करूँगी। जिस प्रकार से परममुनि की शुद्धमति, कामदेव की रति, इन्द्र की शचि, विष्णु की लक्ष्मी और रघुपति की सीता अनुगामिनी मानी गई हैं उसी प्रकार से हे प्रियतम! मैं आपकी अनुगामिनी हूँ। मुझे आपके साथ तपश्चरण, यमकरण अथवा मरण भी रुचिकर है, किन्तु हे प्रिय! आपके बिना जीवन हितकर नहीं है। अन्यथा लोग अँगुली से मेरे यौवन की ओर संकेत

कर मुझ पर शंका करेंगे।'

रानी की इतनी ढोंग भरी बातों को सुनते हुए महाराज यशोधर मन में सोचते हैं—

'अहो! यह वही है कि जिसने कुबड़े के साथ रति क्रीड़ा में आसक्त हो मेरे मरने की भावना भायी थी। किन्तु कैसी विडम्बना है? अभी यह कैसा वाग्जाल रच रही है।'

पुनः एक क्षण सोचकर कहते हैं—

'देवी! आपका प्रीतिभोज सम्पन्न हो, आप अपना कर्त्तव्य करें और अब मेरी किसी विषय में रुचि नहीं रही है अतः अब मैं दीक्षा के लिए जा रहा हूँ।

रानी दौड़कर महाराज के चरणों में गिर पड़ती है और जोर-जोर से रोने लगती है। महाराज जैसे-तैसे उसे उठाकर सान्त्वना देते हैं और कहते हैं—

'ठीक है, प्रिये! चलो तुम सभी के जीमन का कार्य प्रारंभ कराओ मैं भी यथासमय अपनी माता के साथ आता हूँ और तुम्हारे आग्रह से तुम्हारे हाथ से भोजन करके ही दीक्षा के लिए जाऊँगा।

रानी संतुष्ट होती हुई अंतःपुर में चली जाती है।

(५)

राजमहल के अग्रभागों पर पंचरंगी ध्वजाएं फहरा रही हैं, चारों तरफ फूलों की मालाएं लटक रही हैं और रत्नमयी तोरणद्वारों से मार्ग सजाया गया है। महाराज यशोधर अपनी माता चंद्रमती के

साथ अमृतामति के महल में भोजनशाला में स्वच्छ वस्त्र से आच्छादित मणियों के पाटे पर बैठ चुके हैं। उन दोनों के सन्मुख स्वर्णथाल में भोजन परोसा जा रहा है। थाल में छोटी बड़ी कटोरियाँ चमक रही हैं। उनमें नाना तरह के व्यंजन, दाल, चावल, साग, चटनी, कढ़ी आदि परोसे गये हैं। जीमन की बेला में समस्त भोजनशाला उन नानारसों से युक्त रसोई से सुगंधित हो रही है। खीर, पूरी, हलुआ, रोटी, पापड़ आदि खाद्य पदार्थ मधुर रसों से परिपूर्ण हैं। महाराज यशोधर और उनकी माता दोनों ही भोजन करना प्रारंभ कर देते हैं। परन्तु महाराजा यशोधर के हृदय में धड़कन प्रारंभ हो जाती है। मानों वह भावी होनहार से ही कंपन के बहाने महाराज को हिला रही हो। उसी समय स्वर्णपात्र में मोदकों को लिए हुए महारानी अमृतामति सन्मुख आती है और सुवर्ण के समान चमकते हुए लड्डूओं को दोनों की थाली में परोसते हुए धीरे से फुसफुसाकर कहती है—

'ये लड्डू मेरी माता ने भिजवाएँ हैं और बड़े प्रेम से उन्हें मैंने आपके लिए रखे हैं।'

इतना कहते हुए वह कृत्रिम मुस्कुराहट से महाराज को रिझाने का अभिनय करती हुई खड़ी हो जाती है। महाराज और माता चन्द्रमती दोनों ही एक साथ उन मधुर लड्डूओं को खा लेते हैं। उन्हें क्या पता था कि ये लड्डू हलाहल विष से मिश्रित होने से उन्हें यमराज का ग्रास बना देंगे। भोजन समाप्त कर जल पीते ही उन दोनों का शरीर विष के वेग से घूमने लगता है। मूर्च्छा के वश

होकर गिरते-गिरते राजा उच्चस्वर में चिल्लाते हैं —

'अरे! वैद्य को बुलाओ, वैद्य....को....बु....ला....ओ...!!'

रानी अपना मनोरथ सफल होता हुआ देख मन में प्रसन्न होते हुए भी उस समय जोर-जोर से रोना शुरू कर देती है और कहती जाती है —

'हे नाथ! यह क्या? यह क्या? अरे! अरे!!'

इधर क्षणमात्र में ही उन दोनों के शरीर में विष का वेग फैल जाता है। उन दोनों के मुख से फेन निकलने लगता है। कंठगत प्राण हो जाते हैं। रानी अपने केशों को फैलाकर महाराज यशोधर की छाती को पीटते हुए रोने का दृश्य भयंकर कर देती है। उसी समय भृत्यवर्ग दौड़कर युवा महाराज यशोमति को सूचना पहुँचा देते हैं। महाराज यशोमति पिता और दादी की मृत्यु के समाचार को पाते ही हाहाकार करते हुए मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर जाते हैं। मंत्री सामंत वर्ग आकर महाराज को जैसे-तैसे सचेत करते हैं और कर्तव्यपालन की ओर प्रेरित करते हैं। मूर्च्छा हटते ही वह राजकुमार दहाड़ मारकर जोर-जोर से रोने लगता है —

'हाय पिता! तुम हमें छोड़कर कहाँ चले गये हो।'

उसी समय सभी परिवार के लोग वहाँ आकर यशोमति राजा को माता के महल में ले जाते हैं जहाँ कि मातामही और पिता के देह निर्जीव पड़े हुए हैं एवं अमृतामती केशों को फैलाए हुए एक पिशाचिनी जैसी प्रतीत हो रही है। क्षणमात्र में ही अंतःपुर की समस्त रानियाँ महाराजा के परलोक प्रयाण की वार्ता को सुनते ही

गिरती पड़ती अपने-अपने स्थान से चलकर वहाँ पर आ जाती हैं और वहाँ कुछ क्षण के लिए रुदन का ऐसा कोलाहल मचता है कि सारे शहर में हलचल हो जाती है। सभी प्रजा के मुख से अकस्मात् यही शब्द निकलता है कि —

'हाय! यह क्या हुआ? क्या महाराज यशोधर सचमुच में परलोक को प्रयाण कर चुके हैं? क्या यह बात सच है?'

कोई वृद्ध पुरुष सामने आते हुए किसी से कहते हैं —

'अरे भाई! यह समाचार झूठा होगा? अभी-अभी प्रातःकाल में तो मैंने महाराजा के सकुशल दर्शन किये हैं।'

कुछ ही क्षणों में सारी प्रजा उमड़ी हुई राजमहल की ओर आ जाती है। कर्मचारीगण बहुत ही कठिनाई से प्रजा को बाहर ही नियंत्रित कर देते हैं। महाराज यशोमति पिता के पास बैठे हुए विलाप कर रहे हैं —

'हे तात्! असमय में मेरे ऊपर यह वज्राघात कैसे हो गया? क्या आपको परलोक प्रयाण की वार्ता मालूम हो गई थी? क्या आपने मुझसे दूर होने के लिए राज्यभार सौंपा था? ओह!! आपके बिना यह सारा जगत् अंधकारमय हो गया है। हाय! अब इस अवन्ति देश का कौन स्वामी रहा? ओह! पिता के बिना मुझे यह राज्य संपदा अच्छी नहीं लग रही है।'

इत्यादि प्रकार से राजा को विलाप करते हुए देखकर वृद्ध मंत्री संबोधते हुए कहते हैं —

'हे राजन्! इस असार संसार में भला कौन मृत्यु को प्राप्त

नहीं हुआ है? भरत, सगर आदि चक्रवर्ती सम्राट भी कहाँ रहे? बड़े-बड़े नारायण, बलभद्र, कुलकर आदि बलशाली राजाओं को भी काल ने अपना ग्रास बना लिया है अतः हे राजकुमार! शोक छोड़ो और अब राजा की अन्त्येष्टि क्रिया के लिए आज्ञा दो।'

इधर दो अर्थी सजाई जा रही हैं। उन पर नाना प्रकार के जरी के वस्त्र लगाये जा रहे हैं। चंदोवा और कदलीदण्ड लगाये गये हैं। राजा यशोमति उन दोनों शवों को उन अर्थी पर स्थापित करवाते हैं। उसी क्षण पटह, शंख और नगाड़ों की ध्वनि होने लगती है। राजा उदास व दुःखी मन से बार-बार मूर्च्छित हो जाते हैं, सचेत होते ही बार-बार कहते हैं—

ओह! पिता के बिना कैसे जीवित रह सकूँगा?'

नगाड़ों को आगे करके महाराजा और पितामही की अर्थी को परिवार के लोग उठाते हैं और महल के बाहर आ जाते हैं। राजमहल के अंतःपुर की सभी स्त्रियाँ पति के वियोग से महान् संताप को प्राप्त होती हुई और रुदन करती हुई अर्थी के पीछे-पीछे चलने लगती हैं। किन्तु मन की मैली अमृतामति घर से बाहर नहीं निकलती है। कुछ रानियाँ कंकण, हार व डोर त्यागकर वैधव्य दीक्षा ग्रहण कर लेती हैं और कुछ रानियाँ सर्व गृह-परिग्रह त्याग कर घोर तपश्चरण करने में तत्पर हो जाती हैं। सभी परिवार के लोग यशोमति महाराज को आगे करके दोनों की दाहक्रिया सम्पन्न करते हैं। पुनः अग्निसंस्कार से शेष रही अस्थियों को एकत्रित करके गंगा नदी में विसर्जित कर देते हैं। अनन्तर महाराज यशोमति

ब्राह्मण पुरोहित की प्रेरणा से अपने पिता यशोधर और दादी चंद्रमती के नाम से ब्राह्मणों को बहुत सा गोदान देते हैं। भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, ध्वजा, छत्र, भूषण आदि भी दान में देते हैं तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणों को शासन लिखवाकर भी देते हैं। निर्धनों को भी बहुत सा धन दान में देकर उनकी निर्धनता दूर कर देते हैं और तो क्या? महाराज यशोमति बहुत से बैलों का विवाह कराकर पिता के सुख प्राप्ति की कामना करते हैं। आचार्यों का कहना है कि मिथ्यात्व से प्रेरित हुए मनुष्य क्या-क्या अनर्गल चेष्टा नहीं करते? इधर राजा यशोधर का जीव अत्यंत दुर्गम वन में एक मयूरी के गर्भ में आ जाता है और माता चंद्रमती का जीव करहाड़ नगर में एक कुत्ती के गर्भ में आ जाता है।

(६)

अपने प्रसव के समय मयूरी महाराज यशोधर के जीव को अपने पुत्र मयूर के रूप में जन्म देती है। माता मयूरी अपने शिशु को अपने पंखों से ढककर रक्षा करती है। धीरे-धीरे वह शिशु इधर-उधर घूमने लगता है इसी बीच एक व्याघ्र आता है, वन में स्वच्छंदता से क्रीड़ा करती हुई मयूरी को मारकर कपड़े में बांध लेता है और चीत्कार करते हुए मयूर शिशु को उठाकर अपनी पिटारी में डाल लेता है, पिटारी में पड़ा हुआ मयूर तड़फड़ा रहा है किन्तु वहाँ दया किसे आयेगी? वह व्याघ्र मरी हुई मयूरी को कोतवाल को देकर घर पहुँचकर उस मयूर को एक पिंजड़े में बंद कर देता है तब उसकी स्त्री कर्कश स्वर में कहती है—

'अरे! अरे! भूख से मेरा शरीर काँप रहा है, इस छोटे से मयूर से तो मेरा एक ग्रास भी नहीं बनेगा, फिर ये बाल-बच्चे क्या खायेंगे? अरे भील! और बता, तू क्या खायेगा? तूने बड़ी मयूरी दूसरे को क्यों दे दी? अरे शबर! तू यहाँ से चला जा और घर में मत आना।

अपनी स्त्री की ऐसी फटकार सुनकर वह कुछ सोचने लगता है पुनः उस मयूर को लेकर घर से बाहर चला जाता है। मार्ग में कोतवाल उसे दिखता है और हँसते हुए पूछता है—

'मित्र! कहो, वापस कैसे आ रहे हो?'

शिकारी कहता है—

'अरे भाई! इस छोटे से मयूर से मेरी स्त्री को संतोष नहीं हो रहा है, वह कह रही है इससे कितनों का पेट भरेगा?

कोतवाल उस कोमल शिशु को देखता है, दया से आर्द्र हो जाता है और कहता है—

अच्छा! ला, तू इसे मेरे हाथ बेच दे। मैं इसके बदले में तुझे सत्तू दे देता हूँ जिससे तेरे घर में सभी का भोजन हो जायेगा।' वह शिकारी उस मयूर को उसे देकर और बदले में सत्तू लेकर आ जाता है। इधर यह कोतवाल उस मयूर बालक की बिल्ली आदि दुष्ट जीवों से रक्षा करते हुए लालन-पालन करता है। वह मयूर भी कुछ बड़ा होकर घर में क्रीड़ा करता हुआ सभी का मनोरंजन करता रहता है। जब उसके पंचरंगी पंख निकल आते हैं तब वह बहुत ही सुन्दर दिखने लगता है। उस समय कोतवाल उस मयूर को लेकर

उज्जयिनी नगरी के राजा यशोमति को भेंट में समर्पित कर देता है। महाराज यशोमति एकटक मयूर की सुन्दरता को देख रहे हैं कि इसी बीच एक आदमी सुन्दर कुत्ते को भी राजा के समक्ष उपहार में लेकर आ जाता है। राजा दोनों को देख रहे हैं और हर्ष से पुलकिल हो रहे हैं। बार-बार उन दोनों को अपने कोमल हाथों से स्पर्श कर रहे हैं और बहुत ही लाड़-प्यार करते हुए कहते हैं—

'अहो विधाता ने इस मयूर को इतना मनोहर कैसे बनाया है? इसके पंख कितने सुन्दर दिखते हैं? और यह कुत्ता भी मुझे बहुत ही अच्छा लग रहा है, यह ऐसा प्रचण्ड है कि साक्षात् कात्यायनी देवी के शेर से भी भिड़ सकता है।

प्रसन्न होते हुए राजा उस कोतवाल और कुत्ते के मालिक को बहुत सा धन दे देते हैं। पश्चात् मयूर को तो वे अपने घर का आभूषण बना लेते हैं और कुत्ते को घर के रक्षक के हाथ में सौंप देते हैं। वह रक्षक कुत्ते को तो सोने की सांकल से बाँध देता है और मयूर घर में, आँगन में घूमता-खेलता, आकाश में उड़ता हुआ सभी का मनोरंजन करता रहता है।

एक दिन वह मयूर उड़ता हुआ अट्टालिका के शिखर पर जाकर बैठ जाता है चारों तरफ की शोभा निहारते हुए वर्षा के समय सुहावने मेघों को देखता है, मेघ की ध्वनि को सुनकर बड़े आनन्द से नाचने लगता है पुनः कुछ देर बाद महल के आँगन में उस कुबड़े के साथ में बैठी हुई अमृतामति को देखता है उसके मन में पूर्व के संस्कार वश ईर्ष्या भावना जागृत हो उठती है और वह

तत्क्षण ही नीचे उतरकर उन दोनों के ऊपर आक्रमण कर देता है। अपने चंचल नखों से, चोंच से उन दोनों पर प्रहार करता हुआ उन्हें घायल करके भूमि पर गिरा देता है। उनके शरीर से रुधिर बहने लगता है और वे दोनों विह्वल होकर छटपटाने लगते हैं। रानी अमृतामति उठकर क्रोध के आवेश में आकर अपने मणिमय कमर पट्टे से मयूर को मारने लगती है और निर्दयता से उसके पैर मरोड़ देती है। तब मयूर वेदना से तड़फड़ाता हुआ मन ही मन सोचने लगता है।

'अहो! जब मैं राजा था, सर्व शक्तिमान् था तब इस कुबड़े तुच्छ जार को मैंने नहीं मारा और अब छोटा सा मोर होकर इस पर हाथ चलाया।'

इधर कुबड़ा और अमृतामती दोनों ही जोर-जोर से हाहाकार करने लगते हैं—

'अरे! अरे! नौकरों, दौड़ो, दौड़ो, इस मयूर को मारो, मारो, यह पापी कहाँ से आया? अरे रे! यह हमें क्यों कष्ट दे रहा है? राजा यशोमति ने तो इसे बहुत ही लाड़-प्यार से रखा है। ओह! यह तो कोई मेरा शत्रु ही दीख रहा है? जल्दी से इसे मौत के घाट उतार दो।"

दोनों का रोना-चिल्लाना सुनकर समस्त राजपरिवार उस मयूर के पीछे पड़ जाता है। एक नौकरानी अपने हाथ में फावड़ी लिए थी वह उसे ही फेंक कर प्रहार कर देती है, दूसरा अपने हाथ के चँवरदण्ड को दे मारता है तो तीसरा नौकर कपूर का करण्डक

ही उस पर पटक देता है, एक दासी हाथ की कलछुरी से उस पर प्रहार करती है, तो दूसरी अपने हाथ की वीणा को ही फेंककर मयूर पर आघात कर देती है। वह बेचारा मयूर रेंगता हुआ और केंकता हुआ वहाँ से भागता है किन्तु वह गृहदास कुबड़ा उसके पीछे लग जाता है। इसी बीच अत्यन्त भयंकर कोलाहल को सुनकर वह कुत्ता दौड़कर वहाँ आ जाता है और पूर्वजन्म के अपने प्यारे पुत्र मयूर का गला दबोच लेता है। मयूर के प्राण पखेरु उसी क्षण उड़ जाते हैं और कुत्ता साँस भरने लगता है। राजमाता अमृतामति प्रसन्न हो जाती हैं। किन्तु राजा यशोमति वहाँ आकर अपने प्यारे मयूर को मरा हुआ देखकर क्रोध में तमतमाकर उस कुत्ते का गला दबोच देते हैं। वह कुत्ता किकियाने लगता है किन्तु राजा निर्दय होकर भाले की नोंक से उसके शिर पर प्रहार करते हैं कि जिससे उसका सिर फट जाता है और वह भी परलोक के लिए प्रयाण कर जाता है। तब राजा इन मयूर और कुत्ते की मृत्यु से आहत विलाप करने लगते हैं—

'हाय! मेरे घर की लक्ष्मी का भूषण मयूर! तू मर गया, मेरे घर के अग्रभाग पर चढ़कर जब तू पंख फैलाता था तब कितना अच्छा लगता था। जब तू प्रासाद के शिखर पर बैठ जाता था तब तेरे सम्मुख ध्वजाओं की शोभा भी कुछ नहीं रहती थी। अरे! तेरे बिना कौन मेरे मन को आकर्षित करेगा? और कौन घर की बावड़ी के हंस के साथ फिरेगा? कामिनियों के पैरों के नूपुरों की झंकार सुनकर अब तेरे बिना पंख फैला-फैलाकर कौन नाचेगा? हाय,

मुझे ऐसा लगता है कि जैसे मेरे पिता यशोधर की आज ही मृत्यु हो गई हो। हाय दैव! मैंने अपने प्यारे कुत्ते को भी क्यों मार डाला?'

इस प्रकार से राजा को विलाप करते हुए देखकर मंत्री लोग उन्हें समझाते हैं—

'महाराज! इस संसार में माता-पिता, पुत्र-स्त्री, धन, परिजन आदि के संयोग के बाद उनका वियोग होना निश्चित ही है पुनः इन बेचारे पशु-पक्षियों के मरने पर क्या शोक करना? राजन्! उनकी आयु इतनी ही थी अब आप धैर्य धारण कीजिए और अपने राज्यकाज में मन लगाइए।'

इत्यादि प्रकार से राजा को समझा-बुझाकर शांत करते हैं तब राजा स्वयं उन दोनों का मरण संस्कार सम्पन्न करते हैं और जिस प्रकार अपने पिता और मातामही के लिए श्राद्ध-जलतर्पण और पिण्डदान किया था वैसे ही उन दोनों के लिए भी श्राद्ध आदि क्रिया करते हैं। आचार्य कहते हैं—

'अहो! संसार में मोही प्राणी अपने स्वजन और प्रियजनों के मर जाने पर जो पितरों की तृप्ति के लिए अन्य लोगों को भोजन-पान कराते हैं, नाना प्रकार के धन-सुवर्ण आदि का दान करते हैं कि जिससे हमारे पितरगण सुखी हो जावें। किन्तु क्या ऐसा होना संभव है? क्या दूसरों के जीम लेने से अन्य दूसरों को तृप्ति हो सकती है? क्या यहाँ पर दिया गया पिण्डदान या सुवर्णदान पितरों को मिल सकता है? नहीं, अरे! वे तो जहाँ जिस गति में गए हैं उसी के अनुसार ही उन्हें सुख-दुःख भोगने को मिलेगा। इस बात

को समझने के लिए इन राजा यशोधर और राजमाता चन्द्रमती का भव-भवांतर परिचय एक ज्वलंत उदाहरण है।'

इधर राजा यशोमति श्राद्ध आदि से उन मयूर और श्वान की आत्माओं को तृप्त हुआ मानकर सुखपूर्वक अपने राज्य के संचालन में लग जाते हैं उधर मयूर का जीव सुवेलगिरि के पश्चिम भाग में स्थित निर्जन वन में एक लूले नेवले की कानी नेवली के गर्भ में आ जाता है। उस नेवली के गर्भ से जन्म लेकर वह नेवले का शिशु अपनी माँ के स्तनों को पीता हुआ कुछ बड़ा होता है। जब उसे माता के सूखे स्तनों से दूध नहीं मिलता है तब वह जठराग्नि के प्रबल होने से भूख से पीड़ित हुआ एक सर्प को पकड़ कर उसे निगल लेता है। धीरे-धीरे सर्पों का भक्षण करता हुआ वह नेवला अनेक बड़े-बड़े नागों को भक्षण करने का आदी हो जाता है। बिलों से सर्पों को निकाल-निकालकर उनको भक्षण करता हुआ हमेशा सर्पों के कुलों के विध्वंस में ही अपनी शक्ति को लगा रहा है कि 'उधर उस श्वान का जीव भी मरकर उसी वन में सर्प हो गया था जो कि आज तक उसकी दृष्टि में नहीं आया था' अकस्मात् ही वह सर्प उधर से गुजरता है और वन में यत्र-तत्र क्रीड़ा करके अपने बिल में घुसना ही चाहता है कि यह नेवला झपट कर उसकी पूंछ को अपने मुँह में दबा लेता है और उसे खाना शुरू कर देता है।

वह सर्प भी अपना मुँह पलट कर विष की ज्वाला छोड़ने लगता है तथा अपने दृढ़ और विकराल फण से फुँकार मारने लगता है। वह नेवला उसे भक्षण कर रहा है और वह सर्प उस

नेवले को डस रहा है। इसी बीच में पीछे से एक बिज्जू आता है वह नेवले की पीठ का माँस खाने लगता है, उस नेवले के शरीर के बंधनों को तड़ातड़ तोड़ने लगता है और उसके रक्त को गटागट पीने लगता है। इधर बिज्जू नेवले के प्राणों का अपहरण कर रहा है और उधर वही नेवला अपनी माता के जीव उस विषधर सर्प का भक्षण कर रहा है। आचार्य कहते हैं—

'अहो! इस संसार में ऐसा कौन है कि जिसने पशुयोनि में पहुँचकर ऐसी चेष्टाएँ नहीं की हैं? ये बेचारे पशु ऐसे ही एक-दूसरे का आहार कर मर जाते हैं और पुनः-पुनः नाना प्रकार के दुःखों की खान ऐसी तिर्यंच योनियों में ही जन्म-मरण करते रहते हैं। देखो! श्वान की योनि में माता के जीव ने अपने पुत्र मयूर की गर्दन दबोची थी और अब नेवले की योनि में आया हुआ प्यारा पुत्र अपनी माता के ही जीव सर्प को खाकर मर जाता है। संसार की इस विचित्र स्थिति को धिक्कार हो!'

नेवले का जीव मरकर उज्जैन नगरी के समीप शिप्रा नदी में एक मछली के गर्भ में आ जाता है और कुछ ही दिनों में जन्म लेकर तमाम छोटी-छोटी मछलियों को निगलना प्रारंभ कर देता है और सर्प का जीव मरकर उसी नदी में सुंसुमारी के उदर से प्रसूत होकर सुंसुमार हो जाता है और उसी नदी में क्रीड़ा करता हुआ तमाम छोटी-बड़ी मछली आदि जलचर जीवों को अपना ग्रास बनाता रहता है।

(७)

उज्जैनी के राजा यशोमति के अंतःपुर की बहुत सी परिचारिकाएँ नाना सुगंधित स्नान सामग्री को साथ में लेकर शहर के बाहर की शिप्रानदी में जलक्रीड़ा करने के लिए आ जाती हैं। उनमें से कितनी ही सुंदर अंगो वाली हैं, सुन्दर वेष-भूषा और अलंकारों से सजी हुई हैं, कितनी ही कुबड़ी हैं और कितनी ही बौनी हैं। सभी दासियाँ जलक्रीड़ा करने में तत्पर हो जाती हैं। कोई जल में तैरने लगती है, कोई डुबकी लगाकर ऊपर उछल रही है, कोई स्नान कर रही है, कोई उबटन रगड़ रही है, कोई अपनी सहेली पर पानी का छींटा उछाल रही है तो अन्य कोई किसी के मुख पर जल फेंक रही है। इस प्रकार से ये दासियाँ जल में क्रीड़ा कर रही हैं कि इसी बीच वह मछली तैरते-तैरते इन्हीं महिलाओं के निकट आ जाती है। दूसरी तरफ से आता हुआ सुंसुमार उस मछली को पकड़ लेता है इसी मध्य एक कुबड़ी दासी इस सुंसुमार के ऊपर आ पड़ती है। बस क्या था वह सुंसुमार उस दासी के गले को धर दबोचता है इसी बीच वह मछली अपने प्राणों को प्राप्त कर अपना पुनर्जन्म समझते हुए वहाँ से भाग निकलती है और नदी के जल के प्रवाह के साथ भागते हुए एक खन्दक में जा छिपती है। सुंसुमार के दबोचने से वह कुबड़ी जोरों से चिल्लाने लगती है—

"बचाओ, बचा.....ओ, बचा.....ओ! मैं मरी, म.....री, म री।" साथ में आये हुए किंकर जैसे ही यह दृश्य देखते हैं कि दौड़े-दौड़े जाकर राजा से निवेदन करते हैं—

"महाराज! आपके अंतःपुर की एक कुब्जा दासी को जलक्रीड़ा में तत्पर देखकर एक ग्राह ने उसे कठोरता से पकड़ रखा है। राजन्! इस दुष्ट सुंसुमार ने पता नहीं कितने ही निर्दोष सूकर, सांभर और मेष मार डाले हैं। इस मांसलोलुपी ने शिप्रा नदी को रुद्ध कर रखा है और जलक्रीड़ा में उद्यत हुए कितने ही नर-नारियों को भी खा चुका है। आज उसने बेचारी कुब्जा को भी निगल लिया है।'"

किंकरों की बात सुनते ही राजा यशोमति क्रोध से युक्त हो शीघ्र ही अपने घोड़े पर सवार होकर अनेक योद्धाओं के साथ नदी पर पहुँच जाते हैं और सभी मल्लाहों को आज्ञा देते हैं—

"अरे मल्लाहों! तुम सभी शीघ्र ही उस जलचर सुंसुमार को पकड़ो, खोजो, इस नदी से बाहर निकालकर मेरे सामने लेकर आओ।"

इतना सुनते ही सभी खेवटिया एक साथ उस नदी के तल भाग में प्रवेश कर सारे जल को खलबला डालते हैं। इसी मध्य एक पैने गल से उस सुंसुमार का गला बिंध जाता है और एक मछुआ अपने गल द्वारा खींचकर उस सुंसुमार को ऊपर नदी के तट पर ला पटकता है। उसे राजा को दिखाते हैं। तब राजा कहते हैं—

'अरे! यह हिंसक क्रूर सुंसुमार बड़ा निर्दयी है इसने पता नहीं कितने निर्दोष प्राणियों को खाया है फिर भी तृप्त नहीं हुआ है। अब इसे प्राण दण्ड देना चाहिए।'

राजा की आज्ञा पाते ही हत्यारे मांस लोलुपी एक साथ उसका वध करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। वे क्रूर मछुए दुष्ट बुद्धि से उसे जीवित ही अग्नि में तपाते हैं और प्रचण्ड दण्ड देते हुए

बहुत काल में उसके प्राणों को परलोक पहुँचा पाते हैं। इसी बीच मछली मारने का कोलाहल करते हुए बहुत से धीवर एक साथ उसी नदी के तट पर आ जाते हैं और चारों तरफ से बैठ जाते हैं। सभी के हाथ में अत्यन्त सघन डोरों से संकीर्ण जाल है। वे सब अपने-अपने जाल को सर्वत्र नदी में बिछा देते हैं। उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानों महाकाल यमराज ही क्रुद्ध होकर नदी के सारे जल-जंतुओं को सुख की नींद सुलाने के लिए वहाँ आ गया है। जैसे युद्ध भूमि में कोई सुभट चक्रव्यूह में फँस जाने पर निकल नहीं सकता है। अथवा जैसे रेशम का कीड़ा अपने मुख से तंतु निकाल कर उसी में फँस जाता है। या कोई गृहस्थ कुगृहस्थ के मायाजाल में फँसकर और पुत्र-कलत्र आदि के मोह में उलझकर उसी में अटक जाता है निकल नहीं पाता है। उसी प्रकार से वह मछली जो कि सुंसुमार के मुख से छूटकर किसी छिद्र में जा घुसी थी वह बाहर जल में क्रीड़ा करते हुए किंचित् मांस की लोलुपता से वहाँ आकर एक जाल में फंस जाती है। वह मछली बहुत बड़ी है और देखने में बहुत ही सुन्दर दिख रही है। जब वे सभी धीवर उस मछली को मारने के लिए उस पर पैरों का प्रहार करना शुरू करते हैं कि एक कंचुकी कहता है—

'इसे मत मारो, मत मारो, इसके मरने से बहुत ही दुर्गन्ध फैल जायेगी।'

तब वे मछुवे उस मछली को अपने स्थान पर लाकर बाड़े में डाल देते हैं। जहाँ पर तमाम सीपियों और कौड़ियों के ढ़ेर लगे हुए

हैं, कछुआ, मछली और कुलीरों की हड्डियां बिछी हुई हैं। वहीं पर वह मछली जल के अभाव में स्थल पर रात्रि भर छटपटाती रहती है उस समय की उसकी वेदना को भला कौन समझ सकता था? प्रातःकाल होते ही वे मछुवे उस मत्स्य को राजा यशोमति के समीप ले आते हैं। राजा बड़े प्रेम से उसे देखकर राजपुरोहित के मुख की ओर देखते हैं। पुरोहित महाराज को जिज्ञासु समझकर विप्रों के आगम में निश्चित रूप से कहे हुए ऐसे लक्षणों से उस मत्स्य की विशेषता को कहना शुरू कर देते हैं—

हे राजन्! यह पाण्डुर रोहित मत्स्य है, यह नदी प्रवाह में विपरीत तैरता है, इसको पूज्यवेद में बहुत हव्य-कव्य के योग्य कहा गया है। मुरारी विष्णु ने रोहित मत्स्य का अवतार लेकर जगत् के उद्धार की भावना से प्रेरित हो छहों अंगों सहित चारों वेदों को प्रकट किया था। अतः यह मत्स्य परम पवित्र है।'

पुरोहित भट्ट के ऐसा कहने पर महाराज यशोमति प्रसन्न होते हुए पुरोहितों को आदेश देते हैं कि—

'इसी मत्स्य को मेरी माता के भवन में भिजवा दीजिए।"

पुरोहित राजा की आज्ञा से उस मत्स्य को लेकर 'अमृतामती' माता के भवन में पहुँचते हैं और निवेदन करते हैं—

'हे मातः! हम लोगों की वास्तविक बात सुनिये, यह रोहित नाम का मत्स्य है, इसके द्वारा पितृवर्ग को संतुष्ट किया जाता है। बाप के नाम से विप्रों को दिया जाता है। इसकी पूँछ काटकर पकाकर खाने से पितृवर्गों को बड़ा ही संतोष मिलता है।'

इतना सुनकर रानी अमृतामती बहुत ही हर्ष को प्राप्त होती है और पुरोहितों को तदनुरूप उसकी पूँछ के कटवाने का आदेश दे देती है। किंकर उसकी पूँछ कटवाकर मसाले सहित उसे अग्नि में पकाते हैं और पुरोहितों के कहे अनुसार उन सभी भट्ट पुरोहितों को परोस देते हैं। उधर वह पूँछ कटी मछली स्थल पर पड़ी-पड़ी नरक की वेदना का अनुभव कर रही है, इधर ये माँस लोलुपी पुरोहित माँसाहार करके तृप्ति का अनुभव कर रहे हैं और 'आपके पितर तृप्त हो गये' ऐसा समझा रहे हैं।

अनंतर उस मत्स्य को उबलती हुई तेल की कड़ाही में डाल दिया जाता है और उस पर सोंठ, मिरच, पीपल के घोल का छोंक लगा दिया जाता है। बड़े कष्ट से उस मत्स्य के प्राण छटपटा रहे हैं भयंकर वेदना से उसे अपने पूर्व भवों का जातिस्मरण हो आता है वह अपने घर को, परिजनों को पहचान लेता है और शारीरिक दुःख के साथ-साथ ही घोर मानसिक दुःख का अनुभव करते हुए तड़फड़ाने लगता है। पुरोहित लोग झारी और चटुये से उसे कुचलते हैं पुनः उसका मुख फाड़कर उसमें जीरा, मिरच, लवंग आदि का जल भर देते हैं। उसे उछाल-उछाल कर तलते हैं। बेचारा मीन इस नरक सदृश वेदना को भोगते हुए अपने प्राणों को छोड़ देता है। उसे अच्छी तरह पकाकर वे पुरोहित भट्ट उसके माँस को पुरोहितों को परोसते हैं पुनः उसके बचे हुए प्रसाद को माता अमृतामती को, कुबड़े जार को और राजा यशोमति को भी खिलाते हैं। समस्त परिवार ही उस प्रसाद को खाते हुए यह समझता है कि—

'आज मेरे पिता यशोधर महाराज परम तृप्ति का अनुभव कर रहे होंगे।'

आचार्य कहते हैं कि—

'अहो! इस अज्ञानतापूर्ण पापबुद्धि को धिक्कार हो! धिक्कार हो कि जिसके निमित्त से यह मोही प्राणी हिंसा कर्म में भी धर्म मान लेता है।'

उधर सुंसुमार (माता चंद्रमती का जीव) के जीव का मरकर पास के गाँव में बकरी की पर्याय में जन्म हुआ था। यह मत्स्य (राजा यशोधर का जीव) मरकर उसी बकरी के गर्भ से बकरा हो जाता है। काल क्रम से यह बकरा बड़ा हो जाता है तब अपनी जननी बकरी के साथ ही मैथुन सुख का अनुभव करने लगता है।

'अहो! इस संसार की विचित्रता को तो देखो, कि जहाँ पर उसी जननी से जन्म लेकर मूढ़ पशु उसी का भोग करने लगता है।'

(८)

एक समय यह बकरा अपनी माता के साथ ही रमण कर रहा था कि इसी बीच में बकरों के झुंड से एक मोटा बकरा उधर आता है और अपने सींगों से उस बकरे के पेट को फाड़ डालता है वह छटपटाता हुआ मर जाता है और उसका जीव तत्क्षण ही उसी बकरी के गर्भ में आ जाता है। धीरे-धीरे माता के उदर में गर्भ स्थित शिशु बढ़ता जा रहा है और गर्भ की वेदना से दग्धायमान होता हुआ गर्भ से निकलने की आकांक्षा कर रहा है। इसी बीच में एक

बकरा कामातुर होकर उस माता बकरी के साथ भोग कर रहा है कि राजा यशोमति शिकार खेलने के लिए उधर ही आ जाते हैं। वे समस्त वन में घूमते-घूमते पसीने से तर-बतर हो रहे थे किन्तु उन्हें अभी तक कोई भी शिकार नहीं मिला था, अब वे लौटने वाले ही थे कि उस अजमिथुन को देखते हैं। उनको अपने तीक्ष्ण खड्ग से क्षणमात्र में ही दो टुकड़े कर देते हैं। बेचारे बकरा-बकरी दो खण्ड होकर 'मे, मे' करते हुए पृथ्वीतल पर लोट जाते हैं। इसी मध्य राजा की दृष्टि बकरी के गर्भ में स्थित बालक पर पड़ती है वह बालक गर्भाशय में छटपटा रहा है। राजा विस्मय और करुणा के साथ बकरी का उदर फाड़कर इस शिशु को बाहर निकाल लेता है और अपने किंकर को सौंप देता है। इधर वे दोनों बकरा-बकरी रोते हुए अपने प्राणों को छोड़ देते हैं। राजा घर आकर उस बकरी के शिशु को अजरक्षक को देकर कहते हैं—

'तू बड़े प्रेम से इस बकरी के बच्चे का पालन कर।'

धीरे-धीरे वह बकरी का बच्चा बड़ा हो जाता है और अपने ही पूर्व भव के घर में अपनी पत्नी, पुत्र-पुत्रवधू, भगिनी, सुता आदि की सेवा में तत्पर रहता है।

एक दिन राजा यशोमति अपनी कुलदेवी चण्डिका के आगे निवेदन करते हैं—

'हे भट्टारिके! यदि मुझे तेरे प्रसाद से आज शिकार में सफलता प्राप्त हो गई तो मैं तुझे भैंसे की बलि से संतुष्ट करूँगा। हे सिंहवाहिनी! तू मेरा मनोरथ सफल कर।'

ऐसी प्रार्थना करके राजा शिकार के लिए चले जाते हैं। दैवयोग से उन्हें मनचाहा शिकार का लाभ हो जाता है तब वे वहाँ आकर पुरोहित को बुलाकर विधि-विधान के अनुसार देवी के सामने एक मोटे भैंसे की बलि चढ़ा देते हैं।

और प्रार्थना करते हैं कि—

'हे देवि! हे शूल-कपालधारिणी! हे महिषमांस-वसा-रुधिर-प्रिया-कात्यायनी! मुझ पर प्रसन्न होइये।'

राजा बलि के बाद उस भैंसे का मांस पकवा कर देवी की पूजा करके शेष सम्पूर्ण मांस को घर पर मँगवा लेते हैं। वहीं पर वह बकरा मोटी रस्सी से बँधा हुआ खड़ा है। राजा यशोमति अनेक विप्रों को एक पंक्ति से बिठाकर भोजन कराते हैं, उन्हें प्रचुर घी धारा सहित उस मांस के साथ-साथ नाना प्रकार के पकवान परोसे जाते हैं। इसके बाद कंकण, नाना प्रकार के आभूषण भी दिये जाते हैं तत्पश्चात् उन पुरोहितों, विप्रों को गोदान और भूमिदान देकर राजा कहते हैं कि—

'ये सब वस्तुएँ मेरे पूज्य पिता यशोधर महाराज को प्राप्त होंवे।''

उस समय वह बकरा (यशोधर का जीव) जो कि वहाँ दृढ़ रज्जुओं से बँधा हुआ है। उसे जातिस्मरण हो जाता है तब वह सोचने लगता है—

'हाय! यह क्या हो रहा है? मैं तो यहाँ रस्सी से जकड़ा हुआ हूँ और यह मेरा पुत्र मेरी तृप्ति के लिए इन विमूढ़ विप्रों को

मांसाहार करा कर कितना पाप कमा रहा है। ओह! मैंने तो मात्र आटे के मुर्गे की ही बलि की थी जिसके फलस्वरूप अनेक तिर्यंच योनियों में नाना दुःख उठा रहा हूँ और यह सचमुच के प्राणियों की बलि करके भला किस दुर्गति में जायेगा? अहो! कौन जाने? देखो! मैं पास में ही खड़ा हूँ जब मुझे इन विप्रों का खाया हुआ और पाया हुआ कुछ नहीं मिल रहा है तब भला परलोक में गए हुए पितरों को खाया हुआ कैसे मिलेगा? अहो! इस मूढ़ मिथ्यात्व को धिक्कार हो।'

राजा यशोमति और अंतःपुर की सभी रानियाँ विनय से पिता यशोधर के लिए पिण्डदान करते हैं। पुनः सभी स्वजन लोग राजा के साथ मिलकर देवी के प्रसाद रूप उस मांस का भक्षण कर अनेक भोज्य पदार्थों को खाकर एक-दूसरे का मनोरंजन करते हैं। वह बकरा भूख प्यास से विह्वल हुआ वहाँ खड़ा-खड़ा अपने समस्त स्वजनों को पहचान रहा है। किन्तु उसकी भार्या अमृतामती उसे नहीं दिख रही है। उसी समय एक दासी अपनी नाक को अपनी हथेली से ढ़ककर कहती है—

छिः, छिः, आज जो भैंसा मारा गया है उसकी बहुत ही खराब दुर्गंध आ रही है।'

तब दूसरी दासी कहती है—

'नहीं, नहीं, दुर्गंध तो अमृतादेवी के सड़े हुए शरीर से आ रही है जो कि मत्स्य के भोजन से सड़ गया है।

तभी तीसरी दासी कहती है—

'अरे! तुझे पता नहीं है, मैंने जैसा कुछ देखा है वैसा बतलाती

हूँ। यह रानी जब इस कुबड़े में आसक्त हो गई तब उसने अपने पति राजा यशोधर को और अपनी सासु को विष मिला भोजन कराकर उन्हें मार डाला। उसी पाप के फल से इसे नाक और होठों को सड़ा देने वाला महाकुष्ठ रोग हो गया है। बहन! यह नाक फटने वाली दुर्गंध उसी के शरीर से आ रही है।'

इतना सुनकर ये सब दासियाँ उस रानी की ओर नजर डालती हैं पुनः नाक-मुख सिकोड़कर अपनी-अपनी नाक कपड़े से ढ़क लेती हैं। पास में खड़ा हुआ यह बकरा जिसने भी अभी तक यही समझा था कि — 'यह भैंसे के माँस का जो ढेर पड़ा है उसी की दुर्गंध आ रही है' किन्तु जब दासियों के मुख से रानी के चरित्र का बखान सुनता है तब उसे यशोधर की पर्याय में देखी हुई सारी घटनाएँ याद आ जाती हैं। वह बार-बार उस अमृतामती के मुख को देख रहा है किन्तु उस समय उस रानी में पूर्व के सौन्दर्य का नाममात्र अंश भी नहीं दिख रहा है। वह बकरा सब कुछ भूख-प्यास आदि भूल कर एकटक उसी की ओर देख रहा है और मन ही मन सोच रहा है —

अरे! इस रानी में तो मेरी पूर्वपत्नी के एक भी लक्षण दिखाई नहीं दे रहे हैं। सचमुच में, क्या यह वही है कि जिसके साथ भोग भोगते हुए मैं स्वर्गसुख को भी तुच्छ समझता था। ओह!..... विधाता पर-पुरुष गमन करने वाली व्यभिचारिणी स्त्री पर अवश्य ही कुपित होता है। जभी तो उसने इस दुराचारिणी की दुर्दशा कर डाली है। कोढ़ के द्वारा इसकी नाक तो सड़कर गल ही गई है। वह

अब दिखाई ही नहीं दे रही है। इसका बिंबाधर (अधर ओष्ठ) जो कि उस कूबड़े जार को प्रिय था वह तो गलकर खत्म हो ही गया है। जो नख जार के वक्षस्थल में प्रविष्ट होते थे वे भी सड़कर गिर गये हैं। जो नेत्रों के तारे चपलता से जार का मुखावलोकन करते थे वे अब घाव के समान हो गये हैं और उन पर से मक्खियाँ हटाये भी नहीं हट रही हैं। जो स्तन जार के कर से स्पर्शित होते थे वे आज फोड़ों के समान हो गये हैं और उनसे पीव झर रहा है। जिन केश कलापों को जार ने हाथ से पकड़ा था, विधाता ने उन्हें बिल्कुल झड़ा दिया है। जिन हाथों से जार का स्पर्श किया था उन हाथों का पता ही नहीं चल रहा है, उनमें अंगुलियाँ तो सड़-गलकर समाप्त हो ही गई हैं। जिन पैरों से जार के पास जाती थी वे सड़-गल गये हैं जिससे कि अब यह चलने में भी पराधीन हो जाने से दासियों का मुँह ताकती रहती है। अहो! मेरी इस दुराचारिणी भार्या को जबकि विधाता इतना दण्ड दे चुका है फिर भी अभी इसका पता नहीं किस जन्म का कुछ पुण्य शेष है कि जो यह राजमहल में है, राजमाता के नाम से पूजी जा रही है और अनेक दासियाँ इसकी परिचर्या में लगी हुई हैं।.....'

इत्यादि प्रकार से वह बकरा खड़ा-खड़ा उस रानी के दुष्चरित्र को स्मरण कर-करके उसकी दुर्दशा को देख रहा है कि इसी बीच में वह रानी अपनी नौकरानी द्वारा रसोइये को बुलाकर कहती है —

'हे रसोइये! जो यह देवों को अर्पित किया गया है और ब्राह्मणों को भी जिमाने से शेष बचा हुआ यह ढ़ेर का ढ़ेर माँस जो

यहाँ रखा हुआ है, यह भैंसे का माँस बहुत ही घिनावना है यह मुझे नहीं भायेगा। अतः तुम इसे पड़ा रहने दो। जाओ और कहीं से देखकर इसी क्षण मारे गये हरिण या सूकर को ले आओ जिसका माँस मुझे खाने में अच्छा लगेगा।'

इतना सुनते ही निकट में आये हुए राजा यशोमति कहते हैं—

'रसोइये! हरिण व सूकर को रहने दो, विप्रों ने बकरे को मीठा व पवित्र कहा है अतः उसे ही मारकर अम्मा को खिलाओ। देखो, यह बकरा यहाँ बँधा है, मिमिया रहा है और भैंसे के माँस को सूंघ रहा है, इसी का एक पिछला पैर काटकर और पकाकर अम्मा को दे दो।''

राजा की आज्ञा का उल्लंघन करने का किसी में भी साहस नहीं अतः एक भृत्य तुरंत ही शस्त्र लेकर उस बेचारे बकरे का पिछला एक पैर काट डालता है और उसको पकाकर भुरता बनाकर उस रानी के सामने परोस देता है वह कोढ़ की वेदना से पीड़ित होते हुए भी उस माँस को बड़े ही स्वाद से खा जाती है। आचार्य कहते हैं कि—

अहो! वेदधर्म की दुहाई देकर माँसाहार के वशीभूत हुआ मनुष्य तामस प्रकृति से सहित है और वह मरकर तमःप्रभा व तमस्तमःप्रभा नामक नारकों में चला जाता है।'

इधर बकरे का पिछला पैर काटने से वह तीव्र वेदना से व्याकुल हुआ काँपने लगता है, उसकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बह चलती है और तीन पाँव के बल पर खड़ा-खड़ा मे-मे करता

हुआ दशों दिशाओं को देख रहा है। परन्तु भला उसकी वेदना पर किसका ध्यान जाने वाला है? वह मूक पशु पुनः मन ही मन दुःख मना रहा है—

'हाय! हाय!! यह क्या हुआ? अब मैं किसका आश्रय लूँ? कहाँ जाऊँ? हाय बाप रे! यहाँ तो शरण देने वाला मुझे कोई भी दिखाई नहीं दे रहा है। ओह! जब मेरा पुत्र ही टाँग कटवा कर मेरी ही पत्नी के लिए भोजन पकवा देता है तब भला मेरा रक्षक यहाँ कौन होगा?

इत्यादि प्रकार से तीव्र दुःख, शोक और विषाद को प्राप्त हुआ वह बकरा वहीं पर बँधा हुआ अपने पुत्र-पुत्रवधू, पौत्र आदि स्वजनों को, अपने नौकर, चाकरों को बड़ी ही कातरदृष्टि से देख रहा है और यशोधर पर्याय में किये गये अपने 'आटे के मुर्गे की बलिकर्म' को याद कर-कर अब अत्यन्त पराधीन हुआ पश्चाताप की अग्नि में झुलस रहा है। इसीलिए आचार्य कहते हैं—

'हे भव्य जीवों! तुम कभी भी हिंसा में धर्म मत मानो, दयामयी सच्चे धर्म को छोड़कर अन्य किसी की शरण मत लो, अन्यथा इस बकरे के समान ही नाना दुःख भोगना पड़ेगा और पराधीन पशु पर्याय में पछताना पड़ेगा।'

(९)

एक व्यापारी अपने भैंसे पर बहुत सा माल लाद कर यात्रा करते हुए उज्जैनी नगरी में आता है और वह शिप्रा नदी के किनारे

अपना डेरा डाल देता है तथा अपने भैंसे को खोलकर छोड़ देता है। भैंसा बहुत ही थका हुआ था अतः वह शिप्रानदी के अंदर डुबकी लगाने लगता है। उसी समय खड्गधारी पुरुषों से परिरक्षित राजा यशोमति का घोड़ा वहाँ आकर नदी का शीतल जल पीने लगता है। उसे देखते ही भैंसा अपने जातीय स्वभाव के कारण रुष्ट हो उठता है और अपने खुरों से जल को पीटता हुआ घोड़े के निकट आकर अपने पैने सींगों से उसको घायल कर मार डालता है। इस घटना को देखकर राजा के किंकर उस भैंसे को पकड़ लेते हैं और राजा यशोमति के पास ले जाकर कहते हैं —

हे देव! इस भैंसे ने अपने सींगों से आपके प्यारे घोड़े को मार डाला है अतः हे महाराज! इस अपराधी को क्या दण्ड दिया जाये?

राजा एकदम क्रोध में आग-बबूला होकर कहते हैं —

'अरे, रे! इस दुष्ट ने मेरे घोड़े को कैसे मार डाला?.....यह नीच अभी अपनी करनी का फल भोगेगा। इस बैरी को जीते-जीते ही अग्नि में पका-पकाकर मारो.....।

राजा की ऐसी कठोर आज्ञा सुनते ही क्रूर किंकर उस भैंसे की नाक के छेद में डोरा डालते हैं और उसे खींचकर सामने कसकर उसका मुँह बाँध देते हैं तथा पीछे से पूँछ मोड़कर उसे भी बाँध देते हैं फिर उसके चारों तरफ लोहे की सांकल घुमाकर उसके पेट के नीचे आग जला देते हैं। उस समय वह अनाथ भैंसा लपलपाती हुई अग्नि की ज्वालाओं से जलने लगता है तथा तीव्र वेदना से जीभ निकालकर कराहने लगता है। तब रसोइया त्रिफले

का खारा, तीखा और कड़वा पानी लाकर उसके सामने रख देता है। बेचारा भैसा प्यास की गर्मी के कारण उसे पी लेता है। फिर कराहते हुए और जलते हुए उसके चमड़े पर मार लगाई जाती है। इसके कारण बहुत से मल के साथ-साथ उसकी अंतड़ियाँ पश्चिम द्वार से बाहर निकल पड़ती हैं। उस समय वह दीन भैंसा अत्यधिक नारकीय वेदना का अनुभव कर रहा है।

इस क्रूर प्रक्रिया से पकाते हुए जहाँ-जहाँ उस भैंसे का माँस पक जाता है वहाँ उसे काट लिया जाता है और आजी (दादी चंद्रमती) के नाम से उसी के पोते राजा यशोमति के द्वारा वह माँस श्रेष्ठ श्रोत्रिय ब्राह्मणों को परोसा जाता है। अहो!.....यह भैंसा वही है जो गर्भवती बकरी की पर्याय में था और राजा यशोमती के तीक्ष्ण खड्ग से मारा गया था और जिसके उदर से निकलकर अजशिशु को राजा ने रक्षकों द्वारा पालन करवाकर बड़ा किया था जो कि पिछले पैर के काट दिये जाने से तीन पैर के बल पर खड़ा हुआ वहीं पर 'मे मे' कर रहा है। इसी बची भैंसे के मरने के पूर्व ही राजा आदेश देते हैं —

'अरे किंकरों! इस तीन पैर वाले बकरे को भी इसी अग्नि में पका डालो, देखो, वह कितनी देर से 'मे मे' कर रहा है।'

बस क्या था, राजा की आज्ञा पाते ही एक नौकर वेदना से कराहते हुए उस बकरे को पकड़ता है और उठाकर धधगती हुई अग्नि में झोंकने के लिए तत्पर हो जाता है, तब कुशायुक्त हाथ से ले-लेकर और तीक्ष्ण शस्त्र से काट-काटकर उस बकरे को अग्नि

में विसर्जित करते हुए वे पुरोहित राजा को समझाते हैं—

'राजन्! आपके पूज्य पिता महाराज यशोधर की तृप्ति के लिए इस बकरे की बलि की जा रही है।'

आचार्य कहते हैं—

'अहो! इस बलि प्रथा को कल्याणकारी समझने वाले मूढ़ों को धिक्कार हो! धिक्कार हो! कि जहाँ उसी पिता के जीव को उसी पिता के लिए समर्पित कर दिया जाता है।'

इस घृणित हिंसा कर्म में भयंकर नारकीय वेदना का अनुभव करते हुए उस भैंसा और बकरा, दोनों के प्राण पखेरू एक साथ उड़ जाते हैं। इन दोनों माँ बेटे के जीव उसी उज्जैनी नगरी में एक चांडाल के बाड़े में एक मुर्गी के गर्भ में आ जाते हैं। कुछ दिन बाद मुर्गी अण्डे देती है और उनको बड़े ही यत्न से अपने पंखों से सेती रहती है। समय पाकर उन अण्डों से दोनों प्राणी बाहर आ जाते हैं और धीरे-धीरे भूमि पर सरकने लगते हैं। वह चांडालबाड़ा गायों के झुण्डों से और बहुत सी हड्डियों से भरा हुआ है, वहाँ पर पशुओं के मृत कलेवरों से गिरते हुए कीड़े बिलबिला रहे हैं। वहाँ से बहने वाला रक्त का प्रवाह शिप्रा नदी तक पहुँच गया है। वहाँ की कुटियाएं सघन चमड़ों से छायी गई हैं। वहाँ पर यत्र-तत्र मृगों और भैंसों के सींग पड़े हुए हैं। जहाँ-तहाँ कंकाल और कपाल बिखरे हुए हैं। वहाँ पर अग्नि में पकाये जा रहे कुत्तों के रक्त का स्वाद कौवे ले रहे हैं तथा माँस और चरबी से मिश्रित धुआँ उठ रहा है। ऐसे घिनावने चांडालबाड़े में वे दोनों मुर्गी के बच्चे इधर-

उधर घूमते हुए एक नये कचरे के ढ़ेर पर पहुँच जाते हैं। इधर एक बिल्ली आकर इनकी माता मुर्गी का गला दबोच लेती है और उसे कसमसाते हुए खा डालती है। बेचारी मुर्गी क्षण भर में ही यम के मुख में पहुँच जाती है।

कुछ ही देर बाद चांडालिन घर के कूड़े-कचरे को टोकरी में भरकर लाकर उसी कूड़े के ढेर पर जोर से फेंक देती है जहाँ कि ये दोनों मुर्गी के पिल्ले दुबके हुए थे। वह हड्डी, तृण और आँतों के टुकड़ों का कूड़ा उनके सिर पर ऐसा आ पड़ता है कि जैसे मानों उनका दुष्कर्म ही आ पड़ा हो। तब वे दोनों बेचारे कुकुडूँ कूँ की रट लगाने लगते हैं। उस आवाज को सुनते ही चांडालिनी का हृदय भी पिघल उठता है। वह सोचने लगती है—

'अरे! मैंने हड्डियों के साथ-साथ मुर्गी के दोनों बच्चों को भी लाकर फेंक दिया।'

पुनः वह धीरे से अपने पैर से उस कचरे को हटाती है। उसका पैर उन पिल्लों के कोमल शरीर को स्पर्श करता है तब वह उन दोनों पक्षियों को हाथ से उठाकर भीतर ले आती है और अपने घर में एक तरफ रख लेती है। वहाँ पर भी मरे हुए पशुओं के शव सड़ रहे हैं जिससे वह ऐसा भयंकर मालूम पड़ता है कि मानों इन दोनों के दुष्कर्मों का विपाक ही हो। वहाँ पर शीत और उष्ण बाधा को सहन करते हुए तथा भूख-प्यास से संतप्त होकर वे दोनों नाना दुःखों को भोग रहे हैं। कूड़े-कचरे के पड़ने से उनको चोट आ जाने से अंग-अंग दुःख रहे हैं। परन्तु बेचारे किसको कहें? किसकी शरण में जायें?

कभी भूमि तल पर लोटते हैं, कभी अपनी चोंच से छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ों को मार कर खा जाते हैं, कभी जरा सी आहट पाकर अपने प्राणों की रक्षा के लिए इधर-उधर कचरे में छिप जाते हैं।

अब इन दोनों के पंख बड़े हो गये हैं और चित्र-विचित्र दिखने लगते हैं। चोंचे भी सुन्दर और चंचल दिख रही हैं। ये दोनों मुर्गे भूमि को खरोंचते हुए क्रीड़ा कर रहे हैं और इधर-उधर घूम रहे हैं। यशोधर राजा का कोतवाल उधर आ निकलता है वह चोरों को पकड़ने ही इधर से जा रहा था। देखते ही वह चण्डकर्मा कोतवाल उन दोनों मुर्गों को अपने पास मँगा लेता है और बड़े प्रेम से उन दोनों पर हाथ फेरता है। उन्हें अपने साथ ले जाकर राजा यशोमति को भेंट में समर्पित कर देता है। राजा यशोमति बड़े प्रेम से अपने स्निग्ध नेत्रों से बार-बार उनकी ओर देख रहे हैं। उनके सिर पर व उनके सारे शरीर पर हाथ फेरते हैं तो वे मुर्गे 'कुकुडूँ कूँ' बोलना शुरू कर देते हैं। राजा को उनका स्वर बड़ा प्यारा लगता है। प्रसन्न होकर कोतवाल से कहते हैं —

'हे कोतवाल! ये दोनों मुर्गे बड़े ही सुन्दर हैं। इनका स्वर भी अत्युत्तम है। ये उत्तम लक्षण वाले हैं किन्तु अभी ये बहुत छोटे हैं, पिल्ले हैं। बड़े होने तक तुम इन दोनों को अपने महल में रखो, इनकी सुरक्षा करो। जब ये बड़े हो जायेंगे तब हम इनके साथ अपनी रानियों सहित क्रीड़ा करेंगे और इनको युद्ध करते हुए देखकर मन को प्रसन्न करेंगे।'

(१०)

राजा की बात सुनकर सेवक चण्डकर्मा उन दोनों को अपने घर ले जाता है और पिजड़े में बंद कर देता है क्योंकि खुला छोड़ देने से यदि बिल्ली आदि हिंसक पशु उन पर आक्रमण कर दें तो उनकी सुरक्षा कैसे होगी? वे बेचारे दोनों पिल्ले रात भर उसी पिंजड़े में छटपटाते रहते हैं। प्रातःकाल वह कोतवाल उस पिंजड़े को लेकर सुन्दर वन में पहुँचता है कि जहाँ पर राजा यशोमति क्रीड़ा करने के लिए आने वाले हैं। उस वन में एक सुन्दर राजभवन बना हुआ है। उस भवन के प्रांगण में एक पंचरंगा पटमण्डप बना हुआ है। कोतवाल वहीं पर उस पिंजड़े को रख देता है और सामने देखता है तो अशोक वृक्ष के नीचे एक शिलातल पर नग्न दिगम्बर मुनि विराजमान हैं। उस कोतवाल के मन में एकदम रोष उत्पन्न होता है और वह मन में विचारने लगता है —

"अहो! यह नंगा, दुख से पीड़ित हमारी इस भूमि को दूषित करके बैठा हुआ है। इस अपशकुन को कोई दूसरा देख पावे कि उसके पूर्व ही मैं इसे राजा के उद्यान से निकालकर भगाता हूँ।".....

कुछ देर बाद सोचता है —

"अरे! इसे कैसे उठाऊँ ?.....अच्छा मैं इसे अपना क्रोध न प्रकट कर युक्ति से यहाँ से निकालूँगा। पहले मैं इससे प्रश्न करूँगा। फिर यह जो कुछ भी कहेगा उसमें दूषण दिखलाते हुए निरुत्तर करूँगा। पश्चात् अपना रोष प्रगट करके कुछ अयुक्त बोल करके इस अपशकुन को यहाँ से हटा दूँगा। अभी कुछ ही देर बाद महाराजा

यशोमति अपनी प्रियतमा के साथ क्रीड़ा करने आने वाले हैं भला तब तक यह विरूप नग्न यहाँ कैसे बिठाया जा सकता है ?"

ऐसा सोचते हुए वह कोतवाल कपटबुद्धि से आगे बढ़कर साधु की वंदना करता है। मुनिराज उसी समय अपना योग समाप्त कर चुके थे और उसके कपट पूर्ण दुरभिप्राय को समझ रहे थे कि यह दुर्जन है, भक्तिहीन है फिर भी आशीर्वाद देते हुए कहते हैं—

"तुम्हें धर्मबुद्धि प्राप्त हो, तुम्हें आत्मगुण और मोक्ष की प्राप्ति हो और तुम्हारी भ्रान्ति भग्न हो।"

तब वह कोतवाल कहता है—

"योद्धा के शासन में तो धनुष को ही धर्म कहा है, उसके छोरों पर जो प्रत्यंचा बँधी रहती है वही उसका गुण है और रण में शत्रु का विनाश करने के लिए जो बाण छोड़ा जाता है वही मोक्ष है। इसके अतिरिक्त मैं अन्य किसी धर्म, गुण या मोक्ष को नहीं मानता हूँ। मैं तो अपनी पाँचों इंद्रियों के सुखों को ही सुख मानता हूँ। किन्तु तू तो इतना दुर्बल दिखाई देता है, न तेरे पास वस्त्र है न कम्बल, तेरे सर्व अंग दुर्बल और खिन्न हो रहे हैं, नेत्र कपाल में घुस गये हैं, शरीर पसीने से लिप्त है। इसे धो क्यों नहीं डालता? तू रात दिन एक पल के लिए सोता क्यों नहीं ? अपनी आँखों को बंद कर तू किस बात का ध्यान करता रहता है ?.....

वे मुनिराज परम तपस्वी हैं, धीर-वीर हैं, पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति के धारक हैं, अपनी पाँचों इंद्रिय और मन को वश में रखने वाले होने से जितेन्द्रिय हैं। पूर्ण ब्रह्मचर्य का

पालन करने से परम पवित्र हैं। कोतवाल की ऐसी बातें सुनकर किंचित् भी रोष न करके करुणा बुद्धि और मंदस्मित मुद्रा में मधुर शब्दों में कहते हैं—

'हे भव्य! मैं अपनी आत्मा का ध्यान लगाकर जीव और कर्म इन दोनों के पृथक्करण का अभ्यास करता रहता हूँ। मैं सदैव अपने लिए ऐसे स्थान की अभिलाषा करता रहता हूँ कि जो शाश्वत है, अजर-अमर है जिसे प्राप्त कर लेने के बाद पुनः संसार के नाना दुःखों को नहीं भोगना पड़ता है। इस संसार में यह जीव कभी पुरुष हुआ है, कभी स्त्री हुआ है तो कभी नपुंसक भी हुआ है। कभी शांत स्वभाव हुआ है तो कभी क्रूरकर्मा प्रचण्ड स्वभावी। कभी राजा हुआ है तो कभी याचक भी। कभी रूपवान् हुआ है तो कभी कुरूप भी। कभी बलहीन हुआ है तो कभी बलशाली भी। कभी विद्वान् हुआ है तो कभी मूर्ख भी, कभी दयालु हुआ है तो कभी चांडाल भी। इस संसार की ऐसी ही विषम दशा है। जब कभी यह जीव मांसाहारी हुआ है तो मरकर नरकों में पड़ा है और वहाँ पर नाना दुःखों को भोगा है, जैसे-तैसे वहाँ से निकलकर तिर्यंचयोनि में आया है पुनः वहाँ पर बांधने, मारने, छेदने, भेदने आदि के पता नहीं कितने कष्ट उठाये हैं। कदाचित् मनुष्य पर्याय मिली तो वहाँ भी धर्म के बिना हित-अहित कुछ नहीं समझ सका है।

हे वत्स! मैं इन सभी संसार के दुःखों को पाप का ही फल मानता हूँ। अतः इंद्रिय सुखों की निंदा करता हुआ तपस्या करने में प्रयत्नशील रहता हूँ। गोचरीवृत्ति से थोड़ा सा शुद्ध प्रासुक भोजन

ग्रहण करता हूँ और निर्जन स्थान में निवास करता हूँ। आप जैसे भव्य जीवों के लिए धर्म का उपदेश देता हूँ या फिर मौनपूर्वक रहता हूँ। मैं मोह और निद्रा के वशीभूत नहीं होता हूँ। क्रोध नहीं करता हूँ, मान और माया से दूर रहता हूँ और लोभ को अपने पास नहीं आने देता हूँ। मैं हिंसा, असत्य, चोरी और परस्त्री से बहुत दूर हूँ, मेरे पास परिग्रह का लेश भी नहीं है। मैं दयामयी धर्म की शरण में स्वयं रहता हूँ और अन्य भोले प्राणियों को भी यही उपदेश देता हूँ। 'भव्य! तुम स्वयं कहो कि जिसको तुमने सुख मान रखा है क्या वह वास्तव में सुख है? अरे! उसमें कितनी आकुलताएं हैं। भोजन करने के बाद पुनः दूसरे दिन भोजन की लालसा हो जाती है। सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास की बाधा के अतिरिक्त मरने का भय तो प्रत्येक मनुष्य के सिर पर खड़ा ही हुआ है फिर भला उसे संसार में सच्चा सुख कहाँ है? भाई! यदि तुम मेरी बात मानो तो आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास करो और उसे दुःखों से छुड़ाकर सुख में पहुँचाने का प्रयत्न करो। बस इसी का नाम धर्म है। यही जीव का गुण है और इसी के सहारे एक न एक दिन कर्मों के बंधन से छुटकारा मिल सकता है।"

इतना सुनकर कोतवाल कहता है —

"हे मुने! इस शरीर के सिवाय और आत्मा क्या चीज है? मैं तो यही समझता हूँ कि जब तक शरीर है तभी तक सुख-दुःख का अनुभव होता है और शरीर के नष्ट हो जाने के बाद आत्मा नाम की कोई चीज नहीं बच जाती है।"

मुनिराज कहते हैं —

"वत्स! शरीर के नष्ट हो जाने के बाद भी आत्मा कहीं अन्यत्र शरीर धारण कर लेती है। अगर ऐसा न माना जाये तो भला जन्मते ही बच्चों को माता का स्तनपान करना किसने सिखाया? इसके सिवाय कितने ही मनुष्यों को जातिस्मरण होता हुआ देखा जाता है। इसलिए आत्मा नाम की ऐसी चीज है जो कि एक शरीर से निकलकर दूसरा शरीर ग्रहण कर लेती है, इसी का नाम परलोक है। ऐसे ही स्वर्ग नरक भी हैं और मोक्ष भी है। तुम स्वयं अनुभव करते हो तुम्हारी अपेक्षा कोई-कोई पामर मनुष्य या चोर, हिंसक अपराधी कितने अधिक दुःखी हैं, नाना यातनाओं को भोगते हैं। इन पापों का पूर्ण फल जहाँ भोगने को मिलता है ऐसी धरा का नाम ही नरक है और जहाँ पुण्य का, दया परिणाम का, सज्जनता का फल फलता है उसे ही स्वर्ग समझो।"

कोतवाल कुछ क्षण मन में कुछ विचार करता है पुनः विनम्र होकर चरणों में वंदन करता है और कहता है —

" हे गुरुदेव! आप धन्य हैं, आपका जीवन भी धन्य है जो कि आप अपनी परमार्थ साधना में लगे हुए हैं! हे भगवन्! हमें बतलाइये कि अब मैं आपके किस आदेश का पालन करूँ?"

मुनिराज कहते हैं —

"हे भव्य! तुम्हें धर्म ग्रहण करना चाहिए। यह धर्म ही इस जीव को संसार के नाना दुःखों से, नरक, तिर्यंच योनियों से निकालकर उत्तम सुख में पहुँचाने वाला है।"

कोतवाल पूछता है—

"हे भगवन्! यह धर्म कैसे धारण किया जाता है?"

मुनिराज कहते हैं—किसी जीव का वध नहीं करना, झूठ नहीं बोलना, चोरी नहीं करना, परस्त्री को माता के समान समझना और अतिसंग्रह नहीं करना यही धर्म है। यद्यपि यह गृहस्थ धर्म है और तुम्हारे लिए ग्रहण करने योग्य है। सर्व आरंभ और परिग्रह के त्यागरूप मुनिधर्म को ग्रहण करना बहुत ही कठिन काम है।"

कोतवाल कहता है—

"हे स्वामिन्! मेरे घर में कुल परम्परा से ही जीवों का वध होता आ रहा है अतः हे भगवन्! मैं इस हिंसा के सिवाय बाकी झूठ आदि पापों को छोड़ता हूँ। क्योंकि मैं राजा का कोतवाल हूँ। चोर, उचक्के, बदमाश लोगों को दण्ड देना, उनका वध करना यह तो मेरा कर्तव्य ही है।"

मुनिराज कहते हैं—

"हे भव्यात्मन्! सुनो, पापकर्म से कभी भी सुख नहीं मिल सकता है। अहिंसा के प्रसाद से ही सुख-शांति की प्राप्ति होती है। यह देखो, तुम्हारे समीप ही जो यह मुर्गे का जोड़ा है वह किस प्रकार से भव-भवान्तर करता हुआ आ रहा है। यदि तू अपने हिंसामय कुलधर्म को चलाने में ही लगा रहा, तो तू भी इस कुक्कुट युगल के समान नाना योनियों में भ्रमण करते हुए नाना दुःखों को ही भोगता रहेगा।

तब कोतवाल आश्चर्य से युक्त प्रश्न करता है—

"हे भगवन्! कृपा कर मुझे इस कुक्कुट युगल की कथा सुनाइये।"

मुनिराज कहते हैं—

"हे नरश्रेष्ठ! सुनो, ये दोनों इसी नगर में राजलक्ष्मी से सम्पन्न माता और पुत्र थे कि जिनकी तुम लोग विरुदावली गाया करते हो। माता चन्द्रमती और राजा यशोधर इनके नाम थे। कुल परम्परागत हिंसा को, बलि को धर्म मानकर माता के आग्रह से राजा यशोधर ने कृत्रिम आटे के मुर्गे को मारकर देवी के सामने चढ़ा दिया। रानी अमृतादेवी ने दोनों को विष देकर मार डाला तब वे माता और पुत्र बलिक्रिया के पाप से मयूर और कुत्ता हो गये, तत्पश्चात् नेवला और सर्प हुए। उसके पश्चात् ये मत्स्य और सुँसुमार की योनि में उत्पन्न हुए। वहाँ की वेदना भोगकर ये बकरी और पुनः बकरी और भैंसा की योनि में आये जिन्हें तूने पिंजड़े में पाल रखा है और बड़े प्रेम से देख रहा है।"

कोतवाल उनके इतिहास को सुनते ही तिर्यंचयोनि के दुःखों से काँप उठता है और अहिंसा आदि अणुव्रतों को लेने के लिए प्रार्थना करने लगता है। इधर ये दोनों कुक्कुट मुनिराज और कोतवाल के मध्य की सारी चर्चा को ध्यान से सुन रहे थे। उनके हृदय में हिंसा पाप के प्रति भय उत्पन्न हो जाता है और मुनि के द्वारा कथित अहिंसामयी दयाधर्म में प्रेम उत्पन्न हो जाता है वे तत्क्षण ही उस श्रावकधर्म को अपने मन में ग्रहण कर लेते हैं और उस धर्म के अपूर्व लाभ से संतुष्ट होकर उत्कण्ठापूर्वक अपना मधुर अलाप कर देते हैं।

"कुकुडूँ कूँ कुकुडूँ कूं।....."

उधर महाराजा यशोमति काफी देर से आकर वनक्रीड़ा में तत्पर थे, वे इन मुर्गों का मधुर स्वर सुनते ही अपने धनुष की प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाकर अपनी रानी कुसुमावली से कहते हैं—

"हे देवि! देखो हमारा धनुर्वेद का पूर्णज्ञान, हम तुम्हें शब्दवेध लगाकर दिखाते हैं।"

इतना कहते ही राजा अपना बाण छोड़ देते हैं और वह शब्दवेधी बाण ठीक अपने निशाने पर पहुँचकर पिंजड़े में बंद उन कुक्कुट युगल के शरीर को वेध डालता है। वे दोनों बेचारे मुर्गे तत्क्षण ही छटपटा कर अपने प्राण छोड़ देते हैं। उन दोनों की जीवात्मा मुर्गे की योनि से निकलकर धर्मग्रहण के प्रभाव से उसी क्षण में ही रानी कुसुमावली के गर्भ में प्रविष्ट हो जाती है। इधर कोतवाल भी गुरु के पास श्रावकव्रत ग्रहण कर अपने आपको कृत्कृत्य मानता हुआ प्रसन्न हो जाता है।

(११)

रानी कुसुमावली का गर्भ दिन पर दिन वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। जब से कुक्कुट युगल के जीव उसके गर्भ में आये हैं तभी से रानी ने माँसाहार ग्रहण नहीं किया। उसके हृदय में हर समय हर प्राणी के प्रति करूणा का रस प्रवाहित होता रहता है। दुःखी जीवों को अभयदान देने की भावना दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। महाराज के साथ क्रीड़ा के लिए जाने पर वह शिकार देखने से

पराङ्मुख रहती है। महाराज यशोमति भी रानी के अकस्मात् हृदय परिवर्तन से आश्चर्यचकित से हो रहे हैं। क्रम से नव मास व्यतीत हो जाते हैं तब रानी कुसुमावली शुभमुहूर्त में सन्तान युगल को जन्म देती है। पुत्र-पुत्री युगल के जन्म का समाचार सारे नगर में हवा की लहरों के समान ही फैल जाता है। राजभवन में खुशी की गीत-ध्वनि गूँज उठती है, शहनाई की मधुर ध्वनि मुखरित हो उठती है और भी नाना प्रकार के बाजे बजाये जाते हैं। मंत्री, सामंत और भृत्यवर्ग राजा को पुत्र-पुत्री के जन्म की बधाइयाँ दे रहे हैं। राजा यशोमति भी अपनी परम्परा के अनुसार अपने आप्तजनों को, सामंतगणों को और सेवकों को यथायोग्य दान, मान, सम्मान से संतुष्ट कर रहे हैं। याचकों को मुँह माँगा दान दिया जा रहा है। राजा यशोमति के अपार भंडार में भला कमी ही क्या है?

पिता यशोमति शुभ योग, नक्षत्र में संतान के जन्म से प्रसन्न हैं। नामकरण संस्कार के समय राजा मन में विचार कर रहे हैं-

'सचमुच में, इन बालकों के गर्भ में आने के बाद से ही रानी ने किसी जीव की हिंसा का भाव भी नहीं किया है और न माँस ही छुआ है। प्रत्युत न जाने कितने जीवों को अभय दिलवाया है अतः इन दोनों शिशुओं का नाम 'अभय' पद से ही रखना चाहिए।'

पुनः रानी से परामर्श करके राजा बालक को 'अभयरुचि' और बालिका को 'अभयमति' नाम से सम्बोधित करते हैं। यशोधर के पुत्र यशोमति हुए। उनके पुत्र-पुत्री 'अभयरूचि' और 'अभयमती' नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हो जाते हैं। प्रजा के सभी लोग भी पुत्र-

पुत्री के नामकरण से प्रसन्न हो अपने आप में 'अभय' मिलने का आनन्द अनुभव करने लगते हैं। पुत्र-पुत्री की सुन्दरता देखते ही बनती है, जो भी एक बार इन युगल शिशु को देख लेता है वह पुनः इन्हें गोद में लेकर खिलाने के लिए उत्सुक हो जाता है।

माता-पिता के नेत्रों को आनन्दित करते हुए ये दोनों बालक धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं। जैसे चन्द्रमा की कला बढ़ती जाती है वैसे ही ये बालक युगल अपने शरीर की वृद्धि के साथ-साथ ही सौंदर्य, कला और गुणों में भी वृद्धि को प्राप्त करते जाते हैं। किशोरावस्था को समाप्त कर बालक अभयरुचि यौवन के प्रथम चरण में प्रवेश करते हैं तभी राजा यशोमति कुमार को युवराजपट्ट बाँधने का निश्चय कर लेते हैं।

आज शुभमुहूर्त में कुमार को युवराजपट्ट बाँधा जाएगा। समस्त लोग आमोदपूर्वक राजभवन में भोजन करेंगे। ऐसा सोचकर महाराज यशोमति मृगों का माँस प्राप्त करने के लिए तमाम परिवार के साथ शिकार खेलने के लिए प्रस्थान कर देते हैं। उनके आगे-आगे नगाड़े बज रहे हैं और उनके द्वारा एकत्र हुए पाँच सौ कुत्तों का दल साथ में चल रहा है। राजा वन में पहुँचते हैं, वहाँ देखते हैं एक वृक्ष के नीचे आसन लगाए हुए, उग्र तपस्वी, कामदेव के मद का विध्वंस करने वाले पूज्य सुदत्त महामुनिराज ध्यान में विराजमान हैं। राजा मन में विचार करते हैं—

'अरे! यह कार्यसिद्धि का विनाश करने वाला अपशकुन कहाँ से आ गया? अच्छा.....अब यह नग्न क्षपणक मेरे बिना

मारे यहाँ से बाहर कहाँ जा सकेगा?.....'

राजा यशोमति मुनिराज की हिंसा का भाव करते हुए अपना एक शिकारी कुत्ता मुनि के ऊपर छोड़ देते हैं। वह कुत्ता ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों वह चंचल बिजली का पुँज हो अथवा मन या पवन की गति से चलता-फिरता पिशाच ही हो। राजा के साथ अन्य शिकारी उसी कुत्ते के पीछे वज्र के समान नखों वाले अपने जंगली सूकरों को भी छोड़ देते हैं। इसी मध्य सभी कुत्ते एक साथ भौंकते हुए दौड़ पड़ते हैं। उन सभी कुत्तों के दाँत बड़े तीक्ष्ण हैं, उन सबकी पूँछें ऐसी टेढ़ी हैं कि वे कभी भी सीधी नहीं की जा सकती हैं जिससे वे ऐसे मालूम पड़ते हैं कि मानो ये सभी पापिष्ट जीवों के चित्र ही हों। सभी अपनी जिह्वाओं को बाहर निकाले हुए हैं। उनके नख बहुत ही पैने हैं सो ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों ये हिंसारूपी वृक्ष के नये-नये अंकुरे ही निकल रहे हों। ये सभी कुत्ते जोर-जोर से भौंकते हुए मुनीश्वर श्रीसुदत्ताचार्य के समीप पहुँचते हैं और निकट पहुँचते ही महामुनि के तप के प्रभाव से सभी शान्त होकर सिर झुकाकर खड़े हो जाते हैं।

कुत्तों को इस प्रकार शाँत खड़े हुए देखकर राजा के क्रोध का पार नहीं रहता है वे स्वयं अपने हाथ में खड्ग लेकर मुनि को मारने के लिए दौड़ते हैं कि उसी समय एक वणिक्पति कल्याण-मित्र बनकर राजा और मुनि के बीच में आकर खड़ा हो जाता है और हाथ जोड़कर बोल उठता है—

'हे प्रभो! राजा तो लोगों का रक्षक होता है। किन्तु यदि वही

राजा व्रतधारी श्रेष्ठ मुनियों का घात करने लगे, तो फिर इस विंध्यवन में भील क्या करेगा?''

राजा हाथ में उठाई हुई खड्ग को नीची करके सहम कर खड़े रह जाते हैं और सहसा मध्य में आये उस वणिक्पति की ओर एकटक देखने लगते हैं। वणिक्पति कह रहा है—

'राजन्! आप तो पवन, वरुण व वैवस्वत द्वारा प्रशंसित एवं विषयों से विरक्त ऐसे इन मुनिराज को प्रणाम कीजिए।'

यह सुनकर राजा क्रोध से लाल होकर बोलते हैं—

'अरे! यह तुम क्या कह रहे हो? जो यह नग्न, अमंगल, कार्यविनाशक मुनि मेरे द्वारा मृत्युदण्ड दिए जाने योग्य है, मैं उसके चरणों में गिरूँ ? और वेदों के ज्ञाता द्विजवरों को छोड़ दूँ ?''

इस पर वणिक् कहता है—

'अहो! नग्न होना अमंगल कैसे हो सकता है? मन को वश में करने वाला रुद्र भी तो नग्न और धूलि से धूसरित शरीर रहता है। हाथ में कटारी लिए हुए क्षेत्रपाल भी नग्न होता है। रूनझुन ध्वनियुक्त नूपुरों को पैरों में धारण करती हुई, लोहे की करधनी पहने हुए, खरवाहिनी, मुँडमालाधारिणी योगिनी भी नग्न रहती है। ये सभी भयंकर होते हैं, मनुष्य के माँस का भक्षण करते हैं और श्मशान में रहते हैं, ये अपने हाथों में कंकाल व कपाल लिए रहते हैं। कहिए? ये सब हिंसा के घर हैं तो भी क्या अमंगल कहे जा सकते हैं? पुनः ये साधु तो सदा ही सर्व जीवों के प्रति दयावान् हैं, शुद्ध और निर्मलचित हैं। तब इन पूज्य साधु को अमंगल कैसे कहा

जा सकता है?

परमहंस साधु नग्न रहकर ही परमात्मा का ध्यान करते हैं। देखो, सभी मनुष्य भी नग्न रूप में ही तो उत्पन्न होते हैं। रत्नत्रय रूप भूषण के धारी मुनि भी नग्न होकर ही सुख भावनाएँ भाते हैं, तो पुनः अज्ञानी लोग मुनियों को दोषी क्यों ठहराते हैं?.....

इतनी बात सुनकर राजा किंचित् शाँत होकर उस वणिक् से प्रश्न करते हैं—

'वणिक्वर? यह नग्न साधु कभी स्नान नहीं करने से अत्यन्त मलिन अपवित्र हो रहा है पुनः यह वंदनीय कैसे हो सकता है?'

वणिक् कहता है—

'राजन्! स्नान नहीं करना यह इनका 'अस्नानव्रत' नाम का मूलगुण है। यह अस्नानव्रत कथमपि दूषित नहीं हो सकता है। देखो, वेद में भी कहीं पर यज्ञ करने वालों को स्नान नहीं करने का आदेश दिया गया है। फिर महातपस्वी मुनि को स्नान की क्या आवश्यकता है? प्रजापते? ये मुनि तो परमब्रह्मचर्य का पालन करते हैं पुनः इनके अशुचिता कैसे आ सकेगी?.....लोहे की जंग से मलिन हुआ वस्त्र जल से शुद्ध किया जा सकता है, किन्तु क्या पापों से दूषित शरीर जल के स्नान से शुद्ध हो सकता है? फिर मनुष्य तो वसा-चर्बी से चुपड़ा हुआ है तथा लोभ, मोह, माया मद की मलिनता से जकड़ा हुआ है। पुनः-पुनः धोए जाने पर भी यह अशुद्ध ही रहता है, क्योंकि यह शरीर तो नगर भर का मल बहाने वाली नाली के समान है। पुष्पमाला, चंदन और धोए हुए

वस्त्र, ये सभी तभी तक शुद्ध हैं जब तक वे मनुष्य के शरीर से दूर रहते हैं। किंतु हे राजन्! दुर्धर तपधारी महर्षियों का समस्त देह पवित्र ही होता है। उनके शरीर में लगा हुआ मल भी रोगी मनुष्यों के रोग को दूर करने वाला होता है।'

राजा आश्चर्ययुक्त हो वणिक् की बातें सुन रहे हैं पुनः किंचित् रुककर वणिक् कहता है—

'जिनके चरणों की धूलि के लगाने से मनुष्यों का पापरूपी कीचड़ दूर हो जाता है, ऐसे ऋषिराज को, हे राजन्! आप नमस्कार कीजिए। आपने जो इनके प्रति क्रोधभाव धारण किया है, उसे छोड़िए। इन्हें आमौषधि, खेल्लौषधि, जल्लौषधि, विप्रौषधि, सर्वौषधि तथा मोहनाश ऋद्धि आदि बहुत सी ऋद्धियाँ प्राप्त हैं। इनके अंगों को सर्प नहीं काटते हैं, इन पर सिंह, हाथी, भिल्ल तथा तीव्र नखों वाले जंगली पशु आक्रमण नहीं करते हैं।

ये मुनि यदि रुष्ट हो जाएं तो इन्द्र, मेरुपर्वत तथा त्रैलोक्य को भी नीचे गिरा सकते हैं। इनकी दृष्टि तेजोऋद्धि से सृष्टिमात्र को प्रज्वलित कर सकने में समर्थ है, उस दृष्टि के सन्मुख भला कौन ठहर सकता है? इतनी सामर्थ्य रखते हुए भी ये मुनि किंचित् मात्र भी दुष्टजनों पर रुष्ट नहीं होते हैं और न प्रणाम करने वालों से प्रसन्न ही होते हैं। ये महामुनि अत्यन्त मध्यस्थभाव के धारी हैं, महातत्त्वज्ञानी हैं, महायशस्वी हैं तथा जीवन और मरण में सामंजस्य भाव रखने वाले हैं। इनके ऊपर जो शत्रु मनुष्य शस्त्र चलाते हैं, वे इनके लिए कमलपत्र हो जाते हैं। अतः ऐसे गुणों के निधान इन महामुनि को

मारने के लिए आपका हाथ कृपाण की ओर कैसे बढ़ता है? इन्होंने सिंह, शार्दूल आदि क्रूर पशुओं पर भी अनुग्रह करके उनको जैनधर्म की अहिंसाप्रवृत्ति का अनुसरण कराया है।

राजन्! मैं तो श्रावक हूँ अतः वचनमात्र से इनकी प्रशंसा कर रहा हूँ, आप स्वयं ही इन मुनिवर के प्रभाव को देखिए। आपके द्वारा क्रूरकर्मा ऐसे पाँच सौ कुत्तों को छोड़ा गया, किन्तु वे सभी मुनिराज के चरणमूल में जाकर शांत बन गये हैं और अपनी पूँछों को हिलाकर अपनी भक्ति व्यक्त कर रहे हैं। इन्हें देखिए, मोह से मूढ़ मत होइए, इनकी वंदना कीजिए। ये गुणों के निधान सुदत्त नाम के महामुनि हैं।'

इतना सब सुनकर राजा अपनी तलवार को म्यान में रख लेते हैं पुनः पूछते हैं—

'वणिक्वर! बताओ तो ये मुनिराज कौन हैं? इनका परिचय क्या है? कि जिससे इन्होंने इतनी महानता प्राप्त कर ली है?"

तब वणिक् कहता है—

'महाराज! पहले ये कलिंग देश के राजा थे। एक चोर पकड़ा गया, बाँधा गया, पुनः उसका वध कर दिया गया। मतलब अपने न्यायाधिकार में नियुक्त द्विजवरों की समिति ने एक चोर का न्याय किया। उसमें उन्होंने चोर के हाथ-पैर और शिर काटने का दण्ड घोषित किया। इस घटना से राजा को वैराग्य उत्पन्न हो गया। तब वे जीवन और धन के आशारूपी बंधन को छोड़कर एवं अपने विशाल राज्य को जीर्णतृण के समान समझकर सब कुछ त्याग

कर महर्षि होकर गहन पर्वत पर रहने लगे। हे यशोमति राजन्! तभी से आज तक घोर तपश्चर्या करते हुए ये सुदत्ताचार्य गुरुदेव यहाँ पधारे हैं। इनके दर्शन से मनुष्यों के बड़े-बड़े पाप से संचित अशुभकर्म क्षणमात्र में नष्ट हो जाते हैं।'

वणिक् के उपकारी वचन राजा के कानों को बहुत अच्छे लगते हैं। तभी राजा प्रशांतचित्त होकर आगे बढ़ते हैं।'

राजा यशोमति मुनिराज के निकट पहुँचकर चरणों में भक्तिपूर्वक वंदना करते हुए निवेदन करते हैं—

'हे भगवन्! आपके श्रीचरणों में मेरा प्रणाम स्वीकार हो।'

सब जीवों के साथ मैत्रीभाव को रखने वाले मुनिराज भी राजा को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं—

'धर्मलाभोऽस्तु ते—तुम्हें धर्म लाभ होवे।' पुनः वात्सल्यभाव से मधुर शब्दों में कहते हैं—

राजन्! इस संसार में सर्व वस्तुएं सुलभ हैं किन्तु एक धर्म ही अति दुर्लभ है। इसे ग्रहण करने से इस भव में तो सुख मिलता ही है और परभव में भी सुख मिलता है।'

मुनिराज के मुखारविंद से अमृतमयी वचनों को सुनकर राजा मन में विचार करते हैं—

'अहो! ये मुनिराज तो मंदरपर्वत के समान अचल और धीर हैं, गंभीरता में साक्षात् रत्नाकर तथा तेज में स्वयं चन्द्र और दिवाकर हैं। ऐसा ज्ञात होता है जैसे मानों संयम को पूँजीभूत ही कर दिया गया हो, मानों उपशम ही मुनिवेष में उपस्थित हुआ हो,

अथवा जैसे तपस्या की शक्ति के माहात्म्य का सार ही हो, या जिनेन्द्रभक्ति का आवास हो। ये मुनि ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे मानो दयारूपी लता के क्रीड़ापर्वत हों, अथवा क्षमारूपी विशाल पद्मिनी के सरोवर हों। ये मुनिवर तो महासाधु हैं, पवित्र हैं, सन्त हैं। ओह!.....मुझ पापी ने इन्हें मारने का उद्यम किया सो बहुत ही बुरा किया है। अब मैं अपने इस दुष्कर्म का प्रायश्चित्त अपना सिर काट कर करूँगा।'

राजा के मन में चलते हुए इन विचारों को मुनिराज श्री सुदत्ताचार्य जान लेते हैं और तत्काल ही राजा के लिए श्रवण सुहावने वचन कहते हैं—

'हाय-हाय नरेन्द्र! तुम यह क्या विचार कर रहे हो? अपने भ्रमरपुंज सदृश श्याम केशों सहित सिर को मत काटो। दुष्कर्मों की मलिनता तो निंदा और गर्हा द्वारा नष्ट की जा सकती है।'

इतना सुनते ही राजा आश्चर्यचकित हो कल्याणमित्र की तरफ देखते हुए पूछते हैं—

'अरे मुनिराज ने मेरे मन की गुप्त बात को कैसे जान लिया? मुझे बताओ, इन्होंने मेरा हृदय कैसे देख लिया?'

वणिक्पति कहता है—

'राजन्! समताभाव रखने वाले आचार्य परमेष्ठी इस लोक और परलोक संबंधी जिस बात को चाहें बता सकते हैं। आप स्वयं इनसे पूछकर देख लीजिए!'

तब राजा शांतचित्त हो जगत् के सूर्य ऐसे ऋषिराज को

नमस्कार कर पूछते हैं—

मेरे पिता यशोधर अपनी माता सहित मरकर कहाँ गये हैं। जिनके यश की पताका सर्वत्र लहरा रही है ऐसे वे मेरे पितामह यशोध महाराज अब कहाँ पर हैं ?

इतना सुनकर सुदत्त महामुनि अपने दिव्यज्ञान से इन सभी के भव-भवान्तरों को जानकर अपने मधुर वचनों को अमृत के समान झराते हुए कहते हैं—

हे राजन्! तुम्हारे पिता, पितामही के भव-भवान्तर महान् आश्चर्य, दुःख और वैराग्य को उत्पन्न करने वाले हैं। हे महापुरुष! तुम उन सभी को ध्यान देकर सुनो ?

तुम्हारे पितामह यशोध तो अपने श्वेत बालों को देखकर विरक्त हो गये तब तुम्हारे पिता को राजलक्ष्मी सौंपकर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली पुनः दुर्धर तप करके देवलोक को प्राप्त कर चुके हैं।

तुम्हारे पिता राजा यशोधर, जिन्होंने तुम्हारे युवराजपट्ट बंधन के अवसर पर समस्त परिजनों व स्वजनों को आनन्द उत्पन्न किया था, वे आटे से बने मुर्गे का घातकर और कुलदेवी के सम्मुख बलि चढ़ाकर यही माता और पुत्र दोनों विषाक्त भोजन कराये जाने से मृत्यु को प्राप्त हुए। हे राजन्! वे अपने अगले जन्म में श्वान और मयूर हुए। जीव अपने पापों का फल पाता ही पाता है। हे भद्र! श्वान ने जिस मयूर का गला दबोच कर मारा था तुम उसे अपना पिता जानो और तुम्हारे द्वारा फलक से जिसका मस्तक फोड़ा गया था वह कुत्ता तुम्हारी आजी (दादी) का ही जीव था,

ऐसा समझो। संसार में इसी प्रकार जीवों के जीवन का लेन-देन चलता रहता है। तत्पश्चात् तुम्हारा वह पिता नेवला हुआ और उसकी माता हुई भयंकर सर्प! उस भयंकर नेवले द्वारा वह विषधर सर्प खा लिया गया और फिर स्वयं तरक्ष के द्वारा मारा गया। वह तुम्हारे पिता की जननी शिप्रा नदी में भयंकर सुंसुमार के रूप में उत्पन्न हुई। उनके द्वारा तुम्हारी कुब्जा दासी के मारे जाने पर तुमने उसे मरवा डाला। जिस रोहित मत्स्य को वेद में कहे अनुसार भाटों और पुरोहितों को खिलाया गया वह स्वयं तुम्हारा बाप ही तो था, जिसे तुमने ही सन्तापित किया और पिता की सन्तुष्टि के नाम पर जिस पर प्रहार कर करके क्लेश पहुँचाया। फिर वह तुम्हारी दादी का जीव बकरी हुआ और तुम्हारे पिता का जीव उसी का पुत्र बकरा हुआ। जब वह युवा होकर अपनी ही माता पर आरूढ़ था, तभी उसे समूह के नायक बकरे ने अपने तीक्ष्ण सींगों से छेद डाला और वह वहीं पर मर गया। उसका जीव भी उसी बकरी के गर्भ में आ गया जहाँ कि उसका वीर्यबिन्दु पहुँच चुका था। इस प्रकार उस बकरे ने अपने द्वारा ही अपने को अगला जन्म दिया। जब वह बकरा अपनी माता के गर्भ में शरीर संकुचित किए स्थित था, तभी जब तुम्हारा मृग मारने का शिकार सिद्ध नहीं हुआ तब, हे नरेश! तुमने ही आकर उस गर्भवती बकरी को अपने बाण से वेध दिया। इससे अपनी प्रिय माता के पेट के दो टुकड़े हो गये और तुमने उस गर्भवती छौने को जीवित देखा, तो करुणा बुद्धि से तुमने उसे अपने धनिक को दे दिया। उसने उसकी रक्षा की और घर ले आया।

फिर जब माँस का भोजन किया जा रहा था तब तुमने ही उसका पैर काटकर अपनी माता को, 'जो कि पूर्वजन्म की पत्नी थी,' उसे खिलाया। वह बकरी जो, हे राजन्! तुम्हारे ही बाणों से आहत होकर मरी थी, वह अपने ही कुकर्मों के फल से जाकर सिंधुदेश में कालरूप विकराल भैंसा हो गया। क्या तुम नहीं जानते? अरे! वही तो तुम्हारे घोड़े का यमदूत हुआ था, जिसे तुमने ही उसके उदर के नीचे अग्नि जलाकर कराहते हुए पकवाया था। वह भैंसा तुम्हारी आजी ही तो थी! हे महापुरुष! तुम स्मरण करो उस बकरा और उस भैंसा का, जब तुम पिता के श्राद्ध के लिए उन्हें काट-काट कर विप्रों को खिला रहे थे। इस प्रकार अग्नि में पकते हुए वे दोनों एक साथ मरकर मुर्गे की योनि में उत्पन्न हुए और नन्दनवन में उनका मधुर शब्द सुनकर तुमने ही पुनः उन्हें अपने बाण से भेद दिया। वहाँ से मरकर वे दोनों रानी कुसुमावली के गर्भ में स्थित हुए। इस प्रकार—

हे राजन्! वे दोनों संसार की भ्रमण यातना को सहते हुए अभयरुचि और अभयमती-सन्तान युगल के रूप में प्रकट हुए हैं और वे अब, मुर्गे की योनि से मरते समय, मुनि के मुख से उपदेश सुनते हुए प्राण छोड़ने से पुण्यबंध के फलस्वरूप तुम्हारे प्रिय शिशुओं के रूप में तुम्हारे ही घर में विद्यमान हैं।

जो अमृतामती देवी तुम्हारी माता थी, वह भीम निशाचरी के समान माँसभक्षी थी, नानागुणों के धारी ऐसे महर्षियों की निंदा करती थी, कुगुरु और कुदेवों की वंदना करती थी, जिसने भोजन

के समय मत्स्य को जीते तलवाकर विप्रों को दिया था और स्वयं भी खाया था तथा जिसने मद्य भी पिया था और अपने कुबड़े जार के हेतु पति को मार डाला था, वह हड्डियों को गला देने वाले ऐसे कुष्ठ रोग से गल-गलकर रौद्रध्यान से मरकर पाँचवें नरक को गई है। कहाँ यह यशोधर महाराज की महारानी थी? और कहाँ इसे नरक के बिल में आज दुःख उठाना पड़ रहा है। अहो! दुष्कर्म को धिक्कार हो, धिक्कार हो। हे यशोमति महाराज! तुम्हारे पिता, पितामह, माता और दादी की बस इतनी ही करुण कहानी है।

इतना कहकर महामुनि एक क्षण के लिए मौन हो जाते हैं और राजा महामुनि से इन दुःखों से भरपूर जन्म-जन्मान्तरों के चरित्र को सुनकर हाहाकार करने लगते हैं। मुनिराज के चरणों में गिर पड़ते हैं और वर्षा ऋतु के बादलों के समान घोर रुदन करने लगते हैं।

(१२)

मुनिराज के मुखारविन्द से अपने पिता की इतनी दुःखद घटना सुनकर राजा यशोमति का हृदय शोकसागर में डूब रहा है, उनके नेत्रों से बहती हुई अखण्ड अश्रुधारा रुक नहीं रही है। जैसे-तैसे अश्रु के वेग को संभालकर वे महामुनि के चरण कमलों में माथा टेक कर कहते हैं—

'हे भगवन्! यह सब क्या हो गया? हाय, हाय, इस भुवनतल में वह बड़ा निर्दयी है, जिसने मेरे पिता का घात किया है। अब

आज ही मैं अपने पापरूपी वैरी का संहार करता हूँ। लो, गुरुदेव! अब मैं किसी के साथ वैरभाव नहीं रखूँगा। ओह! केवल आटे के बने मुर्गे की बलि देने से व मन में हिंसा की भावना रखने से मेरे गुरुजनों ने इतना दुःख पाया? धिक्कार है इस चर्म चक्षुओं से दिखने वाले मनुष्यपन को।.....मैंने अपने बाप को भी नहीं पहचाना और धर्म मानते हुए मैंने स्वयं जन्म-जन्म में उनका घात कराया।

जहाँ दिगम्बर मुनि गुरु नहीं हैं, जिनेन्द्र भगवान् देव नहीं हैं, उस कुल में जीवों के प्रति दया और विवेक कहाँ ? ओह! जहाँ वनचर जीवों का घात कराया जाता है, वहाँ परभव में स्थित बने बन्धु का भी हनन हो जाता है। मैंने जितने जीव समूहों का घात किया है, उनको कौन देख सकता है?'

पुनः राजा दीर्घ श्वांस लेकर वणिक् सेठ से कहते हैं—

'हे मुनिराज के चरण कमलों के भ्रमर! मेरे कल्याणमित्र वणिक्वर! अब मैं अपने सिंहासन, छत्र, विविध ध्वज, चमर, रथ, हाथी, घोड़े और योद्धाओं की सेनाएँ, इन सबसे हाथ जोड़ता हूँ। हे मित्र! अब इन सब राज वैभव को कुमार अभयरुचि को संभला दो, वह सुख से इनका उपभोग करें। हे कल्याणमित्र! अब तुम गुरुदेव से कहो, मुझे दीक्षारूपी प्रसाद प्रदान करें। मेरी कोमलांगी, बालमृगनेत्री, अभयमती पुत्री का पाणिग्रहण अहिच्छत्र के अधिपति के राजपुत्र से करा दिया जाये।'

राजा यशोमति हाथ जोड़कर पुनः पुनः गुरुदेव के चरणों में

निवेदन करते हैं—

'हे संसार सिंधुतारक! हे कृपासिंधु! अब मुझे आप सर्व पापों से दूर और दुःखों से छुड़ाने वाली ऐसी जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कीजिए।'

इधर राजा मुनिराज के चरण निकट में शाँतचित्त हो प्रार्थना कर रहे हैं। उधर उसी क्षण बिजली के समान नगर में समाचार फैल जाता है। आपस में चर्चाएं शुरू हो जाती हैं। कोई कहता है—

'लो, राजा की आखेट-यात्रा अच्छी तरह सिद्ध हुई। उन्हें तो धर्म लाभ मिल गया, उनको तपश्चर्या पर प्रेम हो गया।'

कोई कहता है—

'अरे! यह क्या हुआ? सचमुच में हमने सुना था तो वह आज सच ही हो गया। 'ये दिगम्बर मुनि हर किसी पर अपना जादू डाल देते हैं। अरे! अरे!! इन्होंने मेरे महाराज को भी वश में कर लिया।'

कोई कहता है—

'क्या महाराज यशोधर के पुत्र यशोमति अपने कुल परंपरा के धर्म को छोड़ देंगे? क्या वो नंगे साधुओं के भक्त बन जायेंगे यह संभव है क्या?'

इत्यादि प्रकार से नाना चर्चाएँ हो रही हैं। इसी बीच अंतःपुर में भी सारा समाचार पहुँच जाता है। तभी उसी क्षण सभी रानियाँ पागल सी होती हुई परस्पर चर्चा करने लगती हैं—

कोई कहती है—

'अरे! प्रियतम के राजतिलक का उच्छेद हो गया, हाय,

हाय, अब शृंगार करने से क्या लाभ?'

एक रानी दूसरे से कहती है—

'बहन! तू यह चित्र काहे को बना रही है? देख, जल्दी चल, प्रभु तो अब कामरस से विरक्तचित्त हो गये हैं।'

कोई कहती है—

'अरे! अब मुखमंडल, तांबूल भक्षण किसलिए? जब स्वामी तपमंडल से रंजित हो रहे हैं।'

कोई रानी अपने पटह, वीणा को फेंककर कहती है—

'हाय, अब तो विधाता एक दूसरा ही वाद्य बजाने वाला है।

कोई स्त्री अपने केश सँवार रही थी सुनते ही बोल पड़ी—

लो, अब इन केशों को उखाड़ फेंकने के लिए विधि का अवसर आ गया है।'

कोई रानी अपने हार को तोड़ फेंकने लगती है, कोई कमर की करधनी को उतारकर दूर डाल देती है, कोई स्त्री जोरों से रुदन करने लगती है तो कोई विह्वल शरीर हो हाहाकार करते हुए मूर्च्छित हो गई, जब अंतःपुर में सहसा शोक सागर उमड़ रहा था कि उस समय आप्तजनों की प्रेरणा से सभी रानियाँ अपने राजमहल से निकलकर गिरती, पड़ती, रोती, बिलखती, हाहाकार शब्दों से दिशाओं को मुखरित करती हुई उद्यान की तरफ चल पड़ती हैं और शीघ्र ही वहाँ पहुँचकर महाराज यशोमति से प्रार्थना करती हैं—

'हे नाथ! इस राज्यश्री के सुख को छीनने वाले तपश्चरण के बहाने देव ने तुम्हें धोखे में डाला है और विडम्बना की है।.....

स्वामिन्! तनिक हम सभी की बात सुनिए, हम सब अप्सराएँ हैं, आप देवेन्द्र हैं और अपना सतखना सुन्दर प्रासाद विमान है, इस प्रकार प्रियाओं का संयोग ही तो स्वर्ग है और भला स्वर्ग क्या है?

राजा यशोमति रानियों की तरह-तरह की वार्ताएँ सुन रहे हैं फिर भी स्तब्ध हैं उपेक्षा बुद्धि से उन शब्दों को कुछ नहीं गिन रहे हैं। इसी बीच राजपुत्र अभयरुचि और पुत्री अभयमती दोनों ही पिता से मिलने को चल पड़ते हैं। उनके साथ नगाड़े की ध्वनि पर चलने वाले बड़े-बड़े हाथी, हिनहिनाते हुए सुन्दर श्वेत घोड़े और नंगी तेज धार की तलवारें लिए हुए किंकर भी चल रहे हैं। कुछ परिवार के लोग सुन्दर सुसज्जित रथ पर बैठे हुए हैं। वे दोनों राजकुमार-राजकुमारी अपनी-अपनी पालकी में बैठकर चल रहे हैं। साथ में अनेक सहचर भी चल रहे हैं। उन दोनों पर चँवर ढोरे जा रहे हैं और उनके ऊपर छत्रावली के लगाने से नभस्तल शोभायमान हो रहा है।

कुछ ही क्षण में वे दोनों नंदन वन मे पहुँच जाते हैं कि जहाँ पर हरी-हरी घास का गलीचा सा बिछा हुआ है। वहाँ वे दोनों देखते हैं कि उनके पिता नरेन्द्र यशोमति बिना किसी सेवक के बिना ध्वज और चंवर के पृथ्वीतल पर ही चारित्र रूपी रत्नों को प्राप्त करने के लिए गुरु के सानिध्य में हाथ जोड़े ऐसे बैठे हुए हैं कि जैसे मानों स्वयं ही श्रामण्य—मुनिपना नर रूप में उपस्थित हो गया है। वे दोनों बालक-बालिका पालकी से उतरकर छत्र, चँवर को दूर से ही छोड़कर मुनि के निकट पहुँचते हैं और उनके

चरण कमलों में भक्ति से नमस्कार करते हैं। मुनिराज परम वात्सल्य भाव से उन दोनों को अनेक शुभाशीर्वाद देते हैं। पुनः बालक हाथ जोड़कर पूछते हैं—

हे भगवन्! मेरे पूज्य पिता को किस कारण से वैराग्य हो गया?"

ऐसा पूछते ही महामुनि सुदत्ताचार्य अपने दाँतों की किरणों को प्रकट करते हुए कहते हैं—

'हे अभयरुचि बालक! तू अपने को पितामह राजा यशोधर समझ और अभयमती कन्ये। तू अपने को अपनी प्रपितामही (पड़दादी) चन्द्रमती राजमाता जान। तेरी ही प्रेरणा से राजा यशोधर ने आटे के मुर्गे की बलि चढ़ाई थी पुनः तुम दोनों रानी अमृतादेवी द्वारा परोसे गये विष भोजन के खाने से मृत्यु को प्राप्त होकर श्वान और मयूर हुए थे। इसी अपने घर में अपने ही पुत्र के पास भेंट रूप में आकर पुनः मयूर को मार कर अपने पोते द्वारा मारे जाने पर दोनों ही मरकर नकुल और सर्प हुए। वहाँ पर भी एक-दूसरे को मारकर, मरकर सुँसुमार और रोहित मत्स्य हुए। पुनः बकरा-बकरी हुए, पुनरपि बकरा और भैंसा हुए। अनंतर कुक्कुट युगल हुए। जहाँ पर यशोमति के बाण से ही विंद्ध होकर गुरु के उपदेश के माहात्म्य से तुम दोनों भाई-बहन के रूप में अपने ही पुत्र और पौत्र से जन्मे हो।

'हे आयुष्मन्तों! इस असार संसार में परिभ्रमण करते हुए जीवों का भला किसके साथ पुत्र-मित्र का या शत्रु का संबंध नहीं

हुआ है।'

मुनिराज के मुख कमल से पूर्व भव-भवान्तर को सुनते हुए उन दोनों को उसी क्षण ही पूर्व के भोगे हुए सारे भवों का ज्यों का त्यों स्मरण हो आता है, अपने कई भवों का जातिस्मरण होते ही नाना वेदनाओं से आहत हुए वे दोनों राजदुलारे मूर्च्छित हो पृथ्वी पर लुढ़क जाते हैं तभी तत्काल धात्री सेविकाएँ उन दोनों को संभालती हैं। उन दोनों पर शीतल चंदन मिश्रित जल छिड़कती हैं और चंवर से हवा करके सचेत करने का प्रयत्न करती हैं। दोनों बालकों को मूर्च्छित हुआ सुनते ही माता कुसुमावली निकट आती हैं और उन्हें वैसे निस्तब्ध पड़े हुए देख कर आप भी मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर जाती है। तब समस्त अंतःपुर की नारियाँ अपने कोमल करतलों से छाती पीटती हुई शोक करने लगती हैं। सभी रानियाँ रानी को सचेत करने का प्रयत्न करते हुए कुछ न कुछ निवेदन कर रही हैं—

एक रानी कहती है—

'हे सौभाग्य पुँज! हे चित्ताकर्षक शक्तिरूप देवी! उठो उठो.....।'

मध्य में ही दूसरी बोल पड़ती है—

'महाराज तो हम लोगों के मुख की ओर भी नहीं देख रहे हैं। ये सुकुमार बालक भी अचेत पड़े हुए हैं और आप भी हमसे विमुख हो रही हैं। भला अब हम लोग कैसे धैर्य धारण करें। हे देवि! उठो, उठो और अपना इष्ट कार्य करो।'

अन्य रानी कहती है—

'हे भद्रे! आप अपना शोक दूर कर हम सब की ओर देखो, ओह! जब मैं दुख में डूबी हुई थी, तब आपने ही तो मुझे यह भोग विलास प्रदान किया था और भूषित करके मुझे अपने पति के निवास पर भेजा था। इसलिए आप मेरी सौत नहीं हो, प्रत्युत बहन हो अथवा अभिन्न सखी हो, शीघ्र ही शोक का परित्याग करो तथा व्रत लेने के लिए उद्यत अपने पतिदेव को रोको।'

कुछ क्षण बाद महादेवी कुसुमावली अपने अश्रुजल से गीले नेत्रों को उघाड़ती है और मूर्छा के हट जाने से उठ कर बैठ जाती हैं। दोनों बालक भी अनेक शीतोपचार से मूर्च्छा के दूर हट जाने से सचेत हो जाते हैं किंतु भव-भव की वेदनाओं का स्मरण कर पुनः निस्तब्ध जैसे पड़े रहते हैं। माता कुसुमावली मुनिराज की वचनध्वनि की ओर कान देकर विचार कर रही हैं—

'क्या मेरे ये दोनों शिशु मूर्च्छा के वश निस्तब्ध पड़े हैं?'

ऐसा सोचते हुए वे स्वयं अपने हाथों को आगे बढ़ा कर उन दोनों को भूमितल से उठाकर अपनी गोद में बैठा लेती हैं पुनः रानी मुनिराज के सम्मुख देखते हुए पूछती हैं—

'भगवन्! इन दोनों मेरे नयनों के तारे के बारे में आपने क्या देखा और समझा है।'

तभी अभयरुचि कुमार स्वयं कहना शुरू करते हैं—

'हे अम्ब! मुझे स्वयं भी तो जातिस्मरण हो आया है और सारा का सारा दृश्य हमारे नेत्रों के सन्मुख झलक रहा है। ये

महाऋषिराज कोई असत्य काव्य की रचना थोड़े ही कर रहे हैं? हम ही वे अपने पूर्वज राजा यशोधर हैं और हमारी यह स्वसा ही तो हमारी पड़दादी चन्द्रमती है। हम ही दोनों वे थलचर मयूर और श्वान हुए बैठे थे, फिर हम ही नकुल और सर्प हुए थे, हम शिप्रानदी के मत्स्य और सुंसुमार हुए थे, फिर हम दोनों ही अज हुए और तत्पश्चात् अज और महिष हुए, हम ही कुक्कुट पक्षी हुए और इस भव में अब हम ही तुम्हारे पुत्र-पुत्री हुए हैं।

अपने पुत्रों के स्नेह में आतुर हुई हे मातः! तू यह निश्चित समझ ले कि तू इस जन्म की तो हमारी माता है, किन्तु हमारे पूर्वजन्म की पुत्रवधू है।'

इसके पश्चात् अनेक प्रकार से सान्त्वना देते हुए राजा यशोमति, माता कुसुमावली, समस्त सामंतगण और समस्त अन्तःपुर के साथ दोनों बालकों को वापस घर भेज देते हैं और आप स्वयं गुरुदेव के पास जैनेश्वरी दीक्षा लेकर मुनि बन जाते हैं।

राजपुत्र-पुत्री आदि सभी लोग राजा के वियोग से शोक विह्वल होते हुए भी लाचार हो अपने नगर वापस आ जाते हैं।

(१३)

राजकुमार अभयरुचि उन्मनस्कचित्त हुए राजप्रासाद में बैठे हुए हैं। तभी कल्याणमित्र आकर उनसे प्रियवचनों में कहते हैं—

'हे राजकुमार! तुम्हारे पिताजी आज दीक्षा लेकर चले गए हैं। अब तुम ही इस सप्तांग राज्य का परिपालन करो।'

यह सुनकर जन्म-जन्मान्तर के भय और क्लेश से खिन्न हुए वे हँसकर कहते हैं—

"श्रेष्ठिन्! वे राजा जो आज प्रव्रजित हुए हैं, पूर्व में मेरे ही नयनानन्ददायी पुत्र थे और मैंने ही उन्हें इस राज्य पर बैठाया था। अब मैं ही उनका चन्द्रमुख पुत्र हुआ हूँ। इस प्रकार दैव ने मुझे अच्छी शिक्षा दी है। तो भाई! अब मैं इस लेन-देन की परिपाटी का उल्लंघन कर पर्वत की गुफा में जाकर रहूँगा। इस मोह जालरूपी सघन मुखावरण को हटाकर तपरूपी लक्ष्मी का मुख देखना चाहता हूँ।'

राजपुत्र! भला अभी आपको तपश्चर्या करने का कौन सा काम है? राजा को पहले समस्त आन्वीक्षिकी—विचार विद्या का ज्ञान अर्जित करना चाहिए। त्रयी-धर्म और अधर्म की विधि को समझना चाहिए कि जिसमें अर्थ और अनर्थ की प्रवृत्ति बतलाई गई है। इसके बाद चौथी दण्डनीति को समझना चाहिए, जिसके अनुसार लोक में नीति और अनीति का व्यवहार समझा जाता है। इन्हीं चार विद्याओं के द्वारा जगत् में योग (अर्जन) और क्षम (सुरक्षा) का प्रचार होता है।

हे युवराज! इन्हीं से धर्म, अर्थ वा काम संबंधी सुख प्राप्त होता है। जब लोक इन गुणों से प्रतिष्ठित होता है, तभी वह निरन्तर सम्पूर्ण भोगों को भोगता हुआ जीता है। दण्डनीति को धारण करते हुए राजा प्रजा की रक्षा कर सकता है। कहने का तात्पर्य यही है कि आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति ये चारों विद्यायें ही

राजव्यवहार के दोषों को दूर करने वाली हैं राजा के बिना जगत् में अपराध के लिए दण्ड कौन दे सकता है? बिना दण्ड के सामान्य लोग पाप क्रिया आदि अनुचित कर्म करने लगते हैं। वे पराए घर और पराई स्त्रियों का अपहरण करने में प्रवृत्त हो जाते हैं और धर्म के नाम को भुला देते हैं। क्षमा, दम, शम, सत्य, शौच तथा जीवदया ये सब धर्म तो मुनियों के लिए हैं किन्तु चारों वर्णों का धर्म तो यही है, जिसका मैंने वर्णन किया है। यद्यपि इस जिनेन्द्रभाषित मुनि धर्म का इन्द्र, धरणेन्द्र, चन्द्र, विद्याधर, सम्राट् आदि अखिल महापुरुषों द्वारा सम्मान किया गया है, फिर भी यदि राज्यशासन की व्यवस्था नहीं है तो वह धर्म भी नहीं टिक सकता है, नष्ट हो जाता है। अर्थात् राज्यव्यवस्था के बिना मुनिधर्म की परम्परा का निर्वाह कहाँ और कैसे होगा? मुनिधर्म तो गृहस्थों के ही आश्रित है। इसलिए हे कुमार! तुम अब मेरे आग्रह को स्वीकार कर राज्य शासन को संभालना अपना प्रथम कर्तव्य समझकर इसमें मन को लगावो।

कल्याणमित्र सेठ का उपदेश सुनकर अभयरुचि राजकुमार मन में सोच रहे हैं—

'यद्यपि मुझे स्वप्न में भी अब राज्य सुखों को भोगने की इच्छा नहीं है फिर भी इस समय धर्मसंकट में अब मैं क्या करूँ?.....'

एक क्षण कुछ सोचते हैं पुनः पिता द्वारा दिए गए राज्य को दोषयुक्त जानते हुए भी विवश हो अनिच्छा से मात्र लोक दिखावे के लिए एक बार राज्य ग्रहण की स्वीकृति प्रदान कर देते हैं।

राजकुमार की मुखाकृति से स्वीकृति पाकर राज्याभिषेक की तैयारी कराते हैं। चारों तरफ विषाद और हर्ष का मिश्रित वातावरण चल रहा है। कोई लोग महाराज यशोमति के वियोग से शून्य हृदय हो खेद मना रहे हैं। कोई लोग अभयरुचि राजपुत्र के राज्याभिषेक का महोत्सव सुनकर प्रसन्न हो रहे हैं।

राजभवन में मंगलाचार किया जा रहा है, विविध रत्नावलयों से मंगल चौक पूरे जा रहे हैं। कस्तूरी की गंध फैल रही है और मंगल दीपकों की जगमगाहट नई रोशनी प्रदान कर रही है। राजकुमार का राज्याभिषेक मंगल वाद्यों के साथ शुरू होता है। सभी आप्तवर्ग, सामंत लोग और प्रजा के लोग अपने नूतन स्वामी का राज्याभिषेक करके उनके मस्तक पर महाराज यशोमति का मुकुट रख देते हैं और उनकी जय-जय ध्वनि से आकाश मंडल को भी मुखरित कर देते हैं।

इधर राजकुमार का राज्याभिषेक मनाया जा रहा है। उधर अन्तःपुर की रानियाँ अपने कंकण, मंगलसूत्र आदि तोड़कर आचार्य संघ में पहुँचकर व्रतों से विभूषित हो श्वेत साड़ी मात्र परिग्रह धारण करके दीक्षित हो जाती हैं। ये महिलाएं जिस समय अपने काले-काले, घुँघराले, लम्बे-लम्बे केशों को उखाड़ती हैं उस समय ऐसा मालूम पड़ रहा है कि मानों यहाँ से स्त्रियाँ कृष्ण, नील लेश्याओं को भी निकाल कर फेंक रही हैं। श्वेत वस्त्र से वेष्टित वे साध्वियाँ पुनः ऐसी प्रतीत होती हैं कि मानों शुक्ल लेश्या ही पूंजीभूत होकर इन साध्वियों के बहाने यहाँ आ गई है।

उधर आचार्य सुदत्त के संघ में मुनि, आर्यिकाओं की वृद्धि होने से संघ की संपदा बढ़ रही है। इधर अभयरुचि राजा को राज्य लक्ष्मी की प्राप्ति होने से उनकी श्रीसंपदा बढ़ रही है।

राज्य सम्पदा को प्राप्त करके अभयरुचि उसी समय अपनी माता की सपत्नी के पुत्र अपने लघु भ्राता यशोधर का राज्याभिषेक करके समस्त राज्य वैभव को उसे दे देते हैं और आप स्वयं उपशम की मूर्ति अपनी छोटी बहन अभयमती को साथ लेकर उसी उपवन में पहुँचते हैं जहाँ कि सुदत्ताचार्य महामुनिराज अपने विशाल संघ सहित विराज रहे हैं। वहाँ पहुँचकर बड़े भक्तिभाव से गुरुदेव के चरण कमलों की वंदना करते हैं पुनः उठकर क्रम-क्रम से अन्य सभी मुनियों को नमस्कार करते हैं। अनन्तर आर्यिकाओं के निकट पहुँचकर अपनी माताओं को जगन्माता के रूप में देखते हुए 'वंदामि' कहकर घुटने टेक सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं। तत्पश्चात् आचार्यदेव के चरण कमलों को अपने कोमल कर पल्लवों से दृढ़तापूर्वक पकड़कर प्रार्थना करते हैं—

'हे भगवान्! अब हमें भी कृपा कर दीक्षा दीजिए।'

अत्यन्त सुकुमार वय वाले इन बालकों को देखकर एक क्षण कुछ विचार कर आचार्य महाराज कहते हैं—

'आर्य वत्स! तुम अभी अत्यन्त दुबले पतले बालक हो, कमल पत्र के समान कोमल हो। कहाँ यह तुम्हारा अतीव कोमल शरीर और कहाँ यह नग्न दिगम्बर मुनिचर्या? इसके विधि-विधान बहुत ही कठोर हैं, जैसे कि बहुत ही छोटे बछड़े पर बड़े बैल के

ढोने का भार नहीं लादा जा सकता है वैसे ही अभी तुम्हें यह नग्न दीक्षा नहीं दी जा सकती है।

हे पुत्र! अभी तुम दोनों उत्तम श्रावक बनकर गुरु की सेवा करते हुए आगम पदों का शिक्षण प्राप्त करो। विपरीत सिद्धांतों को सुन-सुनकर जो शठताएं आ गई हैं, जो लौकिक और वैदिक मूढ़ताएं उत्पन्न हो गई हैं। उन सबको दूर कर सच्चे धर्म के मर्म को समझो और सम्यग्दर्शनपूर्वक अणुव्रत आदि व्रतों को ग्रहण करो।'

इतना सुनकर ये बालक श्रावक के उत्तम व्रतों को समझने की जिज्ञासा व्यक्त करते हैं तब मुनिराज विस्तार से उस धर्म का स्वरूप बतलाते हैं।

(१४)

अभयरुचि गुरु के सानिध्य में बैठे हुए हैं, ना अतिपास और ना अतिदूर में। ऐसे किंचित् हटकर अभयमती भगिनी बैठी हुई है। दोनों ही विनय की मानों साक्षात् मूर्ति हैं। दोनों हाथ जोड़कर प्रश्न करते हैं—

"हे मुनिनाथ! यह सम्यग्दर्शन क्या है? और अणुव्रत किसे कहते हैं?"

आचार्य सुदत्त मुनिराज कहते हैं—

"हे आयुष्मन्तों! सुनो, मैं तुम्हारे लिए सरल और हितकर ऐसे मार्ग का उपदेश देता हूँ।"

जैसे सेना के बिना भयंकर दारुण युद्धस्थल में विजय नहीं

प्राप्त की जा सकती है ऐसे ही बिना सम्यग्दर्शन के तपश्चरण भी नहीं सिद्ध किया जा सकता है। अथवा जैसे मकान को बनाने के लिए पहले नींव का भरना आवश्यक है या वृक्ष के पुष्पित-फलित होने में जैसे उसकी मूल-जड़ आवश्यक है। वैसे ही दीक्षारूपी मकान के निर्माण हेतु सम्यग्दर्शनरूपी नींव का मजबूत होना बहुत ही आवश्यक है।

हे भव्योत्तम! जिनेन्द्रदेव, नग्न दिगम्बर गुरु और उनकी वाणी को ही हितकारी समझकर उन्हें ही सच्चे देव, सच्चे गुरु और आगम मानना, उन पर दृढ़ श्रद्धान करना इसी का नाम सम्यग्दर्शन है। तुम सम्यग्दर्शनरूपी उत्तम रत्न को ग्रहण करो और मिथ्याकल्पित देव, उनके कहे वचन और कुतापसी गुरुओं की भक्ति का सर्वथा त्याग करो। सच्चे जैनधर्म में शंका मत करो, पंचेन्द्रियों के विषयों की आकांक्षा छोड़ो, मुनियों के शरीर को मलिन देखकर भी उसमें ग्लानि न करके निर्जुगुप्सा अंग को धारो, कुगुरुओं के मार्ग में मूढ़ मत बनो, अमूढ़दृष्टि अंग में कुशल हो, चारित्र में दूषण लगाने वाले के प्रति धर्मभाव से उनके अवगुणों को ढ़को, उनके गुणों की वृद्धि के साथ ही अपने गुणों को वृद्धिंगत करो, सम्यक्त्व या चारित्र से च्युत होते हुए को स्थिर करो, सज्जनों में परम वात्सल्य के साथ-साथ खूब ही सच्चे धर्म की प्रभावना करो। चतुर्विध संघ में वैयावृत्य और विनय का व्यवहार करो। इन्हीं गुणों से सम्यग्दर्शन विशुद्ध होता है।

सभी त्रस-स्थावर प्राणी मात्र को अभय देना अहिंसाव्रत है,

किसी को कर्णकटु बात नहीं कहना सत्यव्रत है, परधन से विरक्त होना अचौर्यव्रत है, सभी स्त्रियों को माता-बहन की दृष्टि से देखना, उनके प्रति आसक्ति नहीं होना ब्रह्मचर्यव्रत है और परिग्रह, धन, धान्य, घर कुटुम्ब आदि का त्याग करना अपरिग्रह व्रत है। इन पाँचों व्रतों को पूर्णतया मुनि ही पालन करते हैं। श्रावक तरतमता से एक देशरूप में इन्हें पालते हैं।'

अभयरुचि पूछते हैं—

'हे भगवन्! श्रावकों के सर्व श्रेष्ठ व्रत किस तरह पाले जाते हैं?'

मुनिराज कहते हैं—

'हे नरश्रेष्ठ! श्रावकों के लिए ग्यारह स्थान बतलाये गये हैं जिन्हें ग्यारह प्रतिमा भी कहते हैं। इनके नाम हैं-दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्त वस्तु त्याग, रात्रि भुक्तिविरति, ब्रह्मचर्य, आरंभ त्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग।

१. आठ अंग सहित सम्यग्दर्शन को ग्रहण करना, सप्त व्यसन, मद्य, मांस, मधु और पाँच उदुंबर फल इन सबका त्याग करना दर्शन प्रतिमा है।

२. हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पाँच पापों का एकदेशत्याग करके दिशविदिश परिमाणव्रत, अनर्थदण्डव्रत इन तीन गुणव्रतों का और सामायिक, प्रोषधोपवास, अतिथिसंविभाग और अन्त में सल्लेखनाव्रत इन[१] बारह व्रतों का पालन करना व्रत प्रतिमा है।

३. पूर्वान्ह, मध्यान्ह, अपरान्ह इन तीन संध्या कालों में

१. कुन्दकुन्द कृत चारित्रपाहुड़ में ये ही व्रत हैं।

चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्तिपूर्वक सामायिक करना तृतीय सामायिक प्रतिमा है।

४. प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी को उपवास, एकाशन या एक बार अल्पाहार जल आदि ग्रहण करना प्रोषध प्रतिमा है।

५. हरित पत्र, पुष्प, फल आदि का त्याग करना, वनस्पति और जल को प्रासुक करके खाना-पीना सचित्त त्याग प्रतिमा है।

६. रात्रि में अन्न, पान, मिष्टान्न आदि चतुराहार का त्याग कर देना रात्रिभुक्तिविरत प्रतिमा है।

७. सम्पूर्ण स्त्री मात्र का त्याग करके आत्मगुणों में लीन होना ब्रह्मचर्य प्रतिमा है।

८. सेवा, कृषि, व्यापार आदि आरंभ का त्याग करना आरंभ त्याग नाम से आठवीं प्रतिमा है।

९. धन आदि परिग्रह का त्याग करना परिग्रहत्याग प्रतिमा है।

१०. गृह कार्यों में अनुमति नहीं देना अनुमतित्याग प्रतिमा है।

११. अपने उद्देश्य से बनाये गये भोजन आदि का त्याग करके भिक्षावृत्ति से एक बार शुद्ध आहार ग्रहण करना उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा है।

इनमें से छह प्रतिमा तक व्रत ग्रहण करने वाले श्रावक जघन्य कोटि में आते हैं। ये गृहस्थ आश्रम में ही रहते हैं। सप्तम प्रतिमा से नवमी प्रतिमा तक व्रतों के पालने वाले मध्यम श्रावक हैं। इनसे ऊपर दशवीं, ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक होते हैं। ग्यारहवीं प्रतिमा में क्षुल्लक-ऐलक ऐसे दो भेद माने हैं।

कौपीन और चादर मात्र परिग्रह को रखकर जो शेष परिग्रह और घर कुटुम्ब का त्याग कर देते हैं। गुरु के सान्निध्य में रहते हुए अपनी आवश्यक क्रियाओं को पालते हैं। गोचर बेला में एक बार श्रावक के घर में शुद्ध भोजन ग्रहण करते हैं वे क्षुल्लक कहलाते हैं। जो चादर का भी त्याग कर कौपीन मात्र ग्रहण करते हैं। अपने केशों को अपने हाथ से उखाड़ते हैं—केशलोंच करते हैं वे ऐलक कहे जाते हैं।

स्त्रियों में एक क्षुल्लिका पद भी माना गया है, जिसमें वे एक साड़ी और ऊपर से एक चादर ग्रहण करती हैं। शेष चर्या क्षुल्लक के समान पालती हैं। इन ग्यारह प्रतिमा को पालन करने वाली क्षुल्लिका और मुनि के समान चर्या को पालने वाली स्त्रियाँ आर्यिका कहलाती हैं। इन क्षुल्लक-क्षुल्लिका और ऐलक के हाथ में जीव रक्षा के लिए संयम का उपकरण मयूर पंख से बनी पिच्छिका रहती है और शुद्धि के लिए शौच का उपकरण कमंडलु रहता है।

हे भव्योत्तम! तुम दोनों ही बहुत ही लघुवय के हो अतः इन ग्यारह प्रतिमाओं को ग्रहण करके उत्तम श्रावक बन जावो। कुछ दिन इसी वेष में रहकर कठोर मुनिचर्या का अभ्यास करो। इनके साथ ही साथ तुम बारह अनुप्रेक्षाओं का सतत् चिंतवन करते रहो। देखो—

१. शरीर का लावण्य, नया यौवन, राज्य वैभव आदि संपत्तियाँ सब क्षण भंगुर हैं। ये किसके पास शाश्वत ठहरे हैं? बालकपन नष्ट होता है नवयौवन के द्वारा, यौवन का विनाश होता है वृद्धत्व से। जन्म के पीछे मरण और संपत्ति के अनन्तर विपत्ति आते हैं। यह मानव शरीर भी नाना रोगों का घर है। प्रत्येक मनुष्य तो क्या देवों

की भी आयु पल-पल में घट रही है। जैसे-जैसे एक वर्ष आता है वैसे-वैसे वह आयु घटती चली जाती है। इस असार संसार में एक अपनी आत्मा ही शाश्वत है जो कि अनादिकाल से आज तक न मरी है न मरेगी, उसी को सुखी बनाने का पुरुषार्थ करना विवेकी पुरुष का कर्तव्य है। इत्यादि प्रकार से प्रत्येक वस्तु की क्षण भंगुरता का चिन्तन करना अनित्य अनुप्रेक्षा है।

२. यह मरणरूपी काल प्रत्येक प्राणी को भक्षण कर रहा है। इस जगत् में जब राजा, इन्द्र, धरणेन्द्र और जिनेन्द्र भी काल के गाल में चले जाते हैं तो भला साधारण मनुष्यों की क्या बात है? उनका रक्षक कौन है? तात्पर्य यही है कि हर एक जीव को मृत्यु के आने पर मरना ही पड़ता है। जिनेन्द्रदेव भी आयु के समाप्त होने पर इस संसार में नहीं रह सकते हैं। हाँ, उनका पुनर्जन्म न होने से वह मृत्यु निर्वाण, मोक्ष गमन आदि नामों से पूज्य हो जाती है। अतः मृत्यु को जीतने का पुरुषार्थ करना ही मनुष्य का कर्तव्य है। इसी प्रकार से सतत चिंतवन करना अशरण अनुप्रेक्षा है।

३. राजलक्ष्मी का उपभोग परिवार द्वारा किया जाता है। राजा के रमणीय राज्य वैभव का उपभोग तो सभी परिजन करते हैं, किन्तु अपने कर्म का फल राजा को अकेले ही भोगना पड़ता है। यह जीव अनादि संसार में अकेला ही जन्मता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही नाना दुःखों को भोगता है। जब चेतता है तब अकेला ही निर्वाण को प्राप्त करता है। ऐसा चिंतन करना एकत्व अनुप्रेक्षा है।

४. उन नये-नये भवों में जीव के नेत्र भी अन्य-अन्य होते हैं, घ्राण भी अन्य, संस्पर्शन भी कोई भिन्न ही, कान भी नये-नये होते हैं और मुख में जिह्वा भी अन्य-अन्य ही होती है। अन्य-अन्य कर्म जीव को निगलते हैं तथा अन्य-अन्य नाना प्रकार के अंग उसे प्राप्त होते हैं। जब शरीर में ही प्रत्येक भव में शरीर की और प्रत्येक अवयव की भिन्नता है तब भला जीव से सर्वथा पृथक् स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, जन, मकान आदि अन्य क्यों नहीं हैं? तब भी न जाने क्यों यह मूर्ख जीव मोहरूपी महासमुद्र में अपने को डाल रहा है? ऐसा चिन्तन अन्यत्व अनुप्रेक्षा है।

५. यह जीव नरक, तिर्यंच, देव और मनुष्य इन चारों भवों में अनन्त बार जाता-आता रहा है। इस संसरण का नाम ही तो संसार है। इस जगत् में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव के भेद से संसार के पाँच भेद हैं। इस भव भ्रमण का चिंतवन करना संसार अनुप्रेक्षा है।

६. केवलज्ञान के द्वारा जाने गये इस विस्तीर्ण आकाश के मध्य में लोकाकाश अवस्थित है। इसके अधो, मध्य और ऊर्ध्व ऐसे तीन भेद हैं। यह लोक न तो कोई ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न किया गया है, न विष्णु के द्वारा धारण किया गया है और न रुद्र या काल के द्वारा उसका क्षय ही होता है। यह त्रैलोक्य तो अनंत आकाश में चौदह राजू प्रमाण एक स्कंध के समान स्थित है। अर्थात् इस समस्त अखण्ड लोक को एक महास्कंध कहा जाता है।

इस लोकाकाश में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये

पाँच द्रव्य पाये जाते हैं और आकाश स्वयं एक द्रव्य है। इस प्रकार से छहों द्रव्यों के समुदाय का नाम ही लोक है। जीव का लक्षण चैतन्य है। इससे विपरीत अजीव का लक्षण अचेतन है। जीव के अतिरिक्त पाँच द्रव्य अचेतन हैं। पुद्गल द्रव्य के अणु और स्कंध ऐसे दो भेद हैं, यह द्रव्य ही स्पर्श, रस, गंध और वर्ण इन चार गुण वाला है, मूर्तिक है, जो भी हमें विश्व में दिख रहा है वह सब पुद्गल ही है। संसारी जीव भी पुद्गल के संयोग से मूर्तिक हो रहा है, शरीर वचन, प्राणापान और जीवन, मरण आदि सब पुद्गल के ही उपकार हैं। धर्म द्रव्य जीव और पुद्गलों के चलने में सहकारी कारण है, अधर्मद्रव्य इन्हीं को ठहरने में सहकारी है, आकाश द्रव्य सबको अवकाश देता है और काल द्रव्य सभी द्रव्यों के परिणमन में सहकारी कारण है।

हे वत्स! इन छह द्रव्यों के स्वरूप का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इसलिए तुम इनके स्वरूप को अच्छी तरह समझ कर उसका चिंतवन करो। इस प्रकार से लोक के आकार का मध्यलोक के जंबूद्वीप आदि असंख्यात द्वीप-समुद्रों का और ऊर्ध्वलोक के स्वर्गपटलों का चिंतवन करना लोक अनुप्रेक्षा है।

७. यह मनुष्य का शरीर अस्थि से रचा गया है, चर्म से ढंका हुआ है, दुर्गंध से युक्त घृणास्पद है। हृदय, रक्त, पित्त मस्तिष्क, अन्त्रावली और शुक्र इनके संगम से उत्पन्न यह शरीर सात धातुमय है। इसके अंतरंग को कामदेव ने और भी अधिक मलिन बना दिया है। इस अशुचि शरीर से भी रत्नत्रय की साधना

करके अशरीरी सिद्ध पद प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे इस शरीर के अशुचिपने का चिंतवन करना अशुचि अनुप्रेक्षा है।

८. आत्मा के शुभ या अशुभ परिणामों से प्रति समय पुद्गल कर्म वर्गणाएं आती रहती हैं इसी का नाम आस्रव है। आये हुए कर्मों का आत्मा के प्रदेशों के साथ एकमेक हो जाना बंध है, जैसे कि दूध और पानी मिलकर एकमेक हो जाते हैं। इन आस्रव और बंध के निमित्त से ही जीव संसार में चौरासी लाख योनियों में दुःख उठा रहा है। मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और पंचेन्द्रियों के विषय इनके सेवन से ही आस्रव होता है। इसका बार-बार चिंतवन करना ही आस्रव अनुप्रेक्षा है।

९. इन आते हुए कर्मों को रोक देना संवर है। सम्यक्त्व से मिथ्यात्व को रोका जाता है। संयम से असंयम को, वीतराग समताभाव से कषाय को और इंद्रिय निग्रह से पंचेन्द्रिय विषयों को परास्त किया जाता है। तभी आते हुए कर्म रुक जाने से संवर होता है। इस प्रकार का चिंतवन ही संवर अनुप्रेक्षा है।

१०. तपश्चरण के द्वारा चिरसंचित भी कर्मों का ढेर भस्मसात् हो जाता है। इस प्रकार कर्मों के झरने को निर्जरा कहते हैं। यह निर्जरा संवर सहित महामुनियों के ही कार्यकारी होती है। सामान्यतया प्रत्येक कर्म अपना फल देकर झड़ते ही हैं, किंतु यहाँ पर तपश्चरण आदि उपायों से कर्म को निर्जीर्ण करने का चिंतवन करना निर्जरा अनुप्रेक्षा कही जाती है।

११. क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग,

आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य ये दश धर्म हैं, रत्नत्रय भी धर्म है। श्री जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा हुआ दयामय धर्म ही सच्चा धर्म है। वही सब प्राणियों को अभय देने वाला है। इसलिए हे अभयरुचि और अभयमति! तुम दोनों ही इस सच्चे जैनधर्म की शरण ग्रहण कर अनेक भव्य जीवों को इस धर्म का आश्रय प्रदान करो।

१२. सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति ही बोधि है। यह अतीव दुर्लभ है। अनन्त संसार में निगोद से निकलकर पृथ्वी, जल आदि स्थावर पर्याय पाना ही दुर्लभ है। पुनः दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रियों की त्रस पर्याय में आना बहुत ही कठिन है। वहाँ जीव का अपना कुछ भी पुरुषार्थ नहीं है क्योंकि वह जीव वहाँ पुरुषार्थ करने या समझने का पात्र ही नहीं है। जैसे-तैसे पंचेन्द्रिय होना उसमें भी मनुष्य पर्याय पाना कोटि-कोटि जन्म में दुर्लभ है। मनुष्य होकर भी जैनधर्म की शरण में आना दुर्लभ है। जैनधर्म का आश्रय पाकर भी संयम के भाव होना बहुत ही दुर्लभ है।

हे नरोत्तम! जो तुम्हारे भाव संयम ग्रहण के हो रहे हैं सो तुम अब अपने को निकट संसारी ही समझो। अब तुम्हारे भव भ्रमण का अंत आ गया है। तभी तो तुम इस खाने, खेलने और भोग भोगने की उम्र में, घर में राज्य लक्ष्मी के साधन सुलभ होते हुए भी तृणवत् त्याग कर आ रहे हो।"

इतना सुनते ही अभयरुचि और अभयमती दोनों के नेत्रों में आनन्द के अश्रु छलछला आते हैं। वे दोनों गुरु के चरणों में पुनः पुनः नमस्कार करते हुए गद्गद वाणी में कहते हैं—

'हे नाथ! दया सागर! हे भक्तजन वत्सल! अब आप हम दोनों को अपने हाथ का अवलम्बन देकर इस अपार संसार महासागर से पार करो। हे भगवान् ! अब हम दोनों को आप क्षुल्लक दीक्षारूपी लक्ष्मी प्रदान करो।'

आचार्यवर्य सुदत्त महाराज भी उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर उनकी दीक्षा के योग्य सामग्री मंगाकर विधिवत् उनकी दीक्षा विधि सम्पन्न कर रहे हैं। नूतन दीक्षित मुनिराज यशोमति और नवदीक्षित कुसुमावली आदि आर्यिका माताएं धर्मवात्सल्य से इन कोमलगात्री बालकों को निहार रहे हैं। संघ के सभी साधु-साध्वी इनके अप्रतिम त्याग और अनुपम साहस की सराहना कर रहे हैं। कुछ ही क्षण में इन दोनों के शरीर पर श्वेत वस्त्र और हाथ में पिच्छी कमंडलु दिख रहा है। उज्जयिनी की प्रजा का समुदाय आश्चर्यचकित हो इन्हें निहार रहा है। भीड़ उमड़ती चली आ रही है, नवीन सिंहासनाधिपति राजा यशोधर भी राजा के वेश में आकर अपने अग्रज और अग्रजा को नमस्कार कर रहे हैं। सभी जन समुदाय के नेत्र अश्रु से प्लावित हो रहे हैं। किन्हीं धर्म प्रेमी की आँखों में आनन्दाश्रु छलक रहे हैं तो किन्हीं मोही परिजनों के नेत्रों से शोकाश्रु की झड़ियाँ लग रही हैं।

सचमुच में उस समय का दृश्य कहने के लिए अशक्य है। जो भी वहाँ आता है वह आश्चर्य से एकटक देखता ही रह जाता है।

'अहो! ये किशोर बालक, बालिका, इन्हें क्या सूझी है? ये घर-बार, परिजन, पुरजन और राज्यसुख को छोड़कर अब कौन

सा सुख प्राप्त करना चाहते हैं? क्या इस विशाल राज्य सम्पदा से भी अधिक सुख इस त्याग में है? ये दोनों इस मार्ग में क्यों अग्रसर हुए हैं?"

इत्यादि प्रकार से नाना चर्चाएं जनसमूह के मध्य में चल रही हैं। कोई कुछ समाधान दे रहे हैं। कोई कुछ कह रहे हैं। कुछ जानकार लोग ग्राम निवासीजनों को सान्त्वना देते हुए समझा रहे हैं—

"अरे भाइयों! यह अभयरुचि कुमार ही कतिपय वर्ष पूर्व हमारे महाराज यशोधर थे और यह अभयमति कुमारिका ही राजमाता चन्द्रमति थीं। क्या आपको याद नहीं है कि जब उन्होंने आटे का मुर्गा बनवाकर ग्राम के निकट में देवी जी के सामने उसकी बलि क्रिया की थी। उस पाप के निमित्त से यह कई भवों तक दुःख उठाते हुए पुनः कर्मसंयोग से अपने ही पुत्र के पुत्र हुए हैं। अभी गुरुदेव सुदत्ताचार्य के द्वारा इनके भव-भ्रमण को सुनकर ही महाराज यशोमति विरक्त हुए हैं और इन दोनों को तो अपने पूर्वभवों का स्मरण हो जाने से ही वैराग्य हुआ है। अतः हे सज्जनों! अब तुम नूतन स्वामी बाल राजेश्वर यशोधर की शासन छाया में सुखपूर्वक अपना जीवन यापन करो।

लो, अब हम भी इन्हीं के पदचिन्हों का अनुसरण करना चाहते हैं। हम भी गुरुदेव के कर-कमलों से जैनी दीक्षा ग्रहण करेंगे।" ऐसा कहकर कितने ही विचारशील पुरुष मुनि बन जाते हैं और कितनी ही विवेकवती महिलाएं भी व्रतों को ग्रहण कर लेती हैं। राजा यशोमति की प्रिय रानियाँ जो संयमिनी हुई थीं, गुरुदेव

सुदत्ताचार्य उन्हें उस नगर की प्रधान आर्यिका को सौंप देते हैं और आप स्वयं अपने सभी मुनि आर्यिका, क्षुल्लक-क्षुल्लिका ऐसे चतुर्विध संघ को लेकर अन्यत्र विहार कर जाते हैं।

उनके संघ के सभी मुनि जिन भगवान् द्वारा निरूपित तपश्चरण करने में तत्पर हैं, वे सब कामदेव की व्याधि को विनष्ट कर चुके हैं। वे जब ध्यानमग्न होते हुए आसन जमाकर बैठते हैं उनके शरीर पर क्रीड़ा करते हुए बड़े-बड़े सर्प अपनी लपलपाती हुई जिह्वा से इनके शरीर के पसीने को चाटते हैं। वे मुनि परीषह और उपसर्गों को धैर्यपूर्वक सहन करते हैं। प्रायः सभी व्रत उपवासों को कर करके इतने दुर्बल हो गये हैं कि उनके छाती और पीठ की हड्डियाँ उभर आई हैं। सभी के शरीर स्नान त्यागव्रती होने से धूलि से धूसरित हो रहे हैं, तेल उबटन आदि न लगाने से अत्यंत रुक्ष हो गये हैं।

हेमंत ऋतु की निशाओं में उनके खुले शरीर पर हिमपटल बर्फ जम जाती है। वे सभी मुनि वर्षा ऋतु की मूसलाधार जलवृष्टि को अपने शरीर में झेला करते हैं और ग्रीष्मऋतु में सूर्य की किरणों का प्रखर प्रहार भी सहते रहते हैं। वे सभी साधु पाँच इंद्रियों के विषयों में राग-द्वेष रहित होते हुए जितेन्द्रिय हो चुके हैं, माया, मिथ्या और निदान इन तीनों शल्यों को उखाड़ कर फेंक चुके हैं। वे मान और अपमान में समभाव रखते हैं। इष्टवियोगज, अनिष्ट संयोगज, वेदनाजन्य और निदान इन चार प्रकार के आर्तध्यान से परे हो गये हैं। हिंसानंदी, मृषानंदी, चौर्यानंदी और परिग्रहसंरक्षणानंदी इन चार रौद्र ध्यान को तो वहाँ किसी के पास अवकाश ही नहीं है।

हमेशा धर्मध्यान में लीन रहते हैं। वे कभी आज्ञाविचय, कभी अपायविचय, कभी विपाकविचय और कभी संस्थानविचय धर्मध्यान के चिंतन में अपने उपयोग को लगाते हैं।

ऐसे ये सभी मुनि एक साथ विहार करते हैं और जहाँ पहुँचते हैं वहाँ पर गुरुदेव की आज्ञानुसार ही पर्वत, उद्यान या गिरि की गुफाओं में निवास करते हैं। कोई मुनि स्वाध्याय की वाचना, पृच्छना आदि विधि से पठन-पाठन में लगे हुए हैं। कोई ध्यानप्रिय होने से अधिक-अधिक ध्यान के अभ्यास में लगे रहते हैं। संघ के ऐलक, क्षुल्लक भी गुरु की आज्ञानुसार आगम के अनुकूल प्रवृत्ति करते हुए सतत मुनिचर्या का अभ्यास बढ़ाते हुए मुनि दीक्षा की भावना भाते रहते हैं।

उस संघ में रहने वाली आर्यिकाएं अपनी प्रमुख गणिनी की आज्ञा से उन्हीं के साथ विहार करती हैं। उन्हीं की आज्ञानुसार गुफा, वसतिका आदि स्थानों में निवास करती हैं। समय पर प्रधान आर्यिका के साथ अथवा उनकी आज्ञा से अन्य स्थविर-वयोवृद्धा, तपोवृद्धा, गुणवृद्धा आर्यिकाओं के साथ ही आचार्यदेव और मुनियों की वंदना के लिए आती हैं। वे आर्यिकाएं आगम की मर्यादा, गुरुकुल की मर्यादा पालने में तत्पर रहती हुई कभी भी मुनियों के स्थान पर निवास नहीं करती हैं। अपने संयम और शील की रक्षा करने में सावधान रहती हैं। सतत स्वाध्याय, पठन-पाठन में उद्यमशील रहती हैं। तपश्चरण, उपवास आदि के द्वारा अपने शरीर को कृश करने वाली हैं। अपने आश्रित लघुवयस्का आर्यिकाओं के

संरक्षण में सतत जागरूक रहती हैं।

उसी संघ में अभयरुचि क्षुल्लक और अभयमति क्षुल्लिका उत्कृष्ट कठोर चर्या का अभ्यास करते हुए ज्ञान-ध्यान में प्रवृत्त हो रहे हैं। कब गुरुदेव का कृपाप्रसाद मिलेगा और कब हम दोनों को जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान करेंगे? यही सोचा करते हैं। भारतभूमि के नाना देशों में विचरण करते हुए यह विशाल संघ यौधेय देश में पहुँचता है और उस देश में यत्र-तत्र धर्मप्रभावना करते हुए राजपुर नगर की ओर प्रस्थान कर देता है।

(१५)

राजसभा में राज्यसिंहासन पर राजाधिराज मारिदत्त महाराज विराजे हुए हैं। निकट में ही मंत्रीगण अपने-अपने आसनों को अलंकृत कर रहे हैं। नातिदूर बैठे हुए कुछ समवयस्क मित्र राजा के गुणों का बखान करते हुए सभा को अनुरंजित कर रहे हैं।

एक मित्र कहता है—

'हे राजन्! यौधेय देश आप जैसे नरनाथ को पाकर कृतार्थ हो गया है। इस आपके अनुशासित देश में न कहीं अन्याय सुनने में आता है और न कहीं अत्याचार। सर्वत्र न्याय नीति के प्रशस्त वातावरण में लोग कृतयुग की याद कर रहे हैं।'

दूसरा मित्र कहता है—

यह राजपुर नगरी आप जैसे राजा की राजधानी होने से अपने आपको राजवन्ती सिद्ध कर रही है। जहाँ पर प्रजा के घर

रत्नों के समूह से भरे हुए हैं। जहाँ का श्वेत परकोटा चारों तरफ से नगर को वेष्ठित करके ऐसा दिख रहा है मानों आपका यश ही पूंजीभूत होकर चारों तरफ खड़ा हो गया हो।'

तीसरा मित्र कहता है—

'हे स्वामिन्! हे मारिदत्त महाराज! आप दानशीलता में कर्ण हैं, वैभव में साक्षात इन्द्र हैं, रूप में कामदेव हैं, कांति में चंद्र हैं, शत्रुओं के सैन्यरूपी वृक्ष को दोलन करने में प्रचण्ड वायु हैं। प्रभु, मंत्र और उत्साह इन तीन राजशक्तियों से सहित हैं। आपकी मुख मुद्रा सदा ही प्रसन्न रहती है। राजन्! आप सदैव जयशील रहो।'

कुछ क्षण तक सभा में शान्ति बनी रहती है। पुनः राजा पूछते हैं—

'मंत्रिवर! अपने नगर में आजकल कोई नई वार्ता हो तो सुनाओ।'

एक मंत्री निवेदन करता है—

'महाराज! आजकल नगर में एक भैरवाचार्य आये हुए हैं। वे बहुत ही पहुँचे हुए योगीश्वर हैं, उन्हें बहुत कुछ सिद्धियाँ प्राप्त हैं।'

राजा कौतुक से पूछते हैं—

'क्या वे कुछ चमत्कार भी दिखाते हैं?'

मंत्री कहते हैं—

'हाँ, महाराज! वे बड़े चमत्कारी बाबा हैं।'

राजा कहते हैं—

'मंत्रिवर! तब तो आप उन्हें हमारे पास में अवश्य लाओ।'

मंत्री कहते हैं—

'जो आज्ञा महाराज!'

और वे स्वयं ही उन्हें लिवाने के लिए चले जाते हैं। वे उनके निकट पहुँचते हैं तो देखते हैं कि वे भैरवाचार्य गेरुवा वस्त्र पहने हुए हैं, सिर पर पंचरंगी टोपी पहने हैं, गले में एक योगपट्ट बाँध रखा है, पैरों में चमचमाती खड़ाऊँ पहन रखी हैं और हाथ में बत्तीस अंगुल प्रमाण एक दण्ड लिए हुए हैं। इस दण्डे को बार-बार आकाश में उछाल रहे हैं और हाथ में झेल रहे हैं। उन्होंने अपने एक हाथ में एक सींग भी ले रखा है। वे बिना कुछ पूछे ही अपने आप अपना माहात्म्य कहना शुरू कर देते हैं।

'मेरे सामने ही चार युग बीत गये हैं फिर भी मैं वृद्ध नहीं हुआ हूँ, मैं कल्पधारी जो ठहरा। नल, नहुल, वेणु, मान्धाता तथा अन्य और जो भी राजा-महाराजा हुए हैं, वे सब मेरे देखते-देखते इस पृथ्वी का उपभोग करके चले गये हैं। मैंने राम-रावण की भिड़न्त भी देखी है और राक्षसों को समर भूमि में धराशायी होते भी देखा है। मैंने युधिष्ठिर को उसके बंधु सहित जुँआ में हारते भी देखा है और महायुद्ध में कौरवों का संहार करते भी देखा है। मैं चिरंजीवी हूँ इसमें संदेह मत करो। मैं सब लोगों को शान्त कर सकता हूँ, मैं चाहूँ तो सूर्य के विमान को चलते-चलते थाम दूँ तथा चंद्र की चाँदनी को एकदम ढाँक दूँ। मुझे सभी विद्याएँ स्फुरायमान हैं, बहुत से मंत्र-तंत्र तो मेरे आगे-आगे चलते हैं।.....'

इन सब बातों को सुनते हुए मंत्री बहुत प्रभावित हैं। वे

सोचते हैं—

'सचमुच में, इस राजपुर का अहोभाग्य आज ही हुआ है जो कि कौल मार्ग की दीक्षा देने वाले कौलाचार्य यहाँ साक्षात् आ पहुँचे हैं। इनके दर्शन से राजा भी धन्य हो जाएंगे।'

पुनः वे मंत्री भैरवाचार्य को साष्टांग नमस्कार करके निवेदन करते हैं—

'महायोगीराज! महामहिम, महाराजा मारिदत्त आपके दर्शन के लिए आतुर हो रहे हैं। आज भाग्य से आपकी शुभ कीर्ति उनके कानों में पहुँची है अतः आप अविलम्ब चलिए।'

भैरवाचार्य कहते हैं—

'ठीक, ठीक, राजा के वंश समुन्नति का शुभ अवसर आ गया है जभी उन्होंने मुझे याद किया है। चलो हम साथ चलते हैं।'

इतना कह वह मायावी योगी मंत्री के साथ चल पड़ता है। सचमुच में राजा में सर्वराजगुण होते हुए भी वे धर्म से अछूते ही हैं। कारण कि उनके पूर्वज चले गये हैं, उनके समवयस्क साथी सभी विषयासक्त मदोन्मत्त हैं। अतः राजा भी उन्हीं की संगति से मद और मद्य से सहित शिकार प्रेमी और ऐसे-ऐसे दंभी गुरुओं की भक्ति करने वाले बन चुके हैं।

ये दोनों राजदरबार में पहुँचते हैं। राजा भैरवानन्द को देखते ही सिंहासन से उठ खड़े होते हैं और आगे बढ़ कर उनके चरणों में लोट जाते हैं, भक्ति से हाथ जोड़कर प्रणाम निवेदन करते हैं तब भैरवानन्द बहुत ही प्रसन्न हो जाता है और आशीर्वाद देते हुए

कहता है—

'राजन्! तुम्हारी कामना पूर्ण हो, मैं भैरव हूँ व हृदय से तुम पर प्रसन्न हुआ हूँ। तुम जो कुछ चाहो मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने में समर्थ हूँ।'

राजा उसे उच्च आसन पर बैठाते हैं पुनः उसके चरणों के निकट बैठकर हाथ जोड़कर कहते हैं—

'हे देव! आप प्रजा की सृष्टि और संहार करने में समर्थ हैं। आप कौलमार्गचारी योगीश्वर हैं। आप चिरंजीवी हैं, अतएव जो कुछ हुआ और होने वाला है वह सब आपको मालूम ही है, आप त्रिकालज्ञ हैं। हे स्वामिन्! आप मुझ पर प्रसन्न होकर अपना महाप्रसाद प्रदान कीजिए।'

वह भैरव मन ही मन सोचता है मेरी तो यहाँ पाँचों उँगलियाँ घी में हैं। अब मैं विश्व पूज्य महाभैरवानन्द बन जाऊँगा। अब तो यह राजा मेरे वश में है। अब मैं यथेष्ट इन्द्रिय सुखों का उपभोग कर सकूँगा। पुनः वह राजा से कहता है—

'राजन् मुझे सभी ऋद्धियाँ प्राप्त हैं। मेरी विद्यासिद्धि क्षणमात्र में अपना चमत्कार प्रगट कर देती है। समस्त गुणों से युक्त होकर ही पृथ्वीतल पर प्रगट हुआ हूँ। आप मुझे भैरवानंद का अवतार समझो। और कहो, तुम्हें क्या-क्या चाहिए जो-जो वस्तु तुम माँगोगे वही-वही मैं तुम्हें प्रदान करूँगा।'

राजा प्रसन्न हो निवेदन करते हैं—

'हे योगिराज! मुझे खेचरत्व—आकाश में गमन करने की

शक्ति प्रदान कीजिए।'

भैरव कहता है—

'बहुत अच्छा, मैं आपमें आकाशगामिनी शक्ति उत्पन्न कर सकता हूँ। यदि आप मेरे परमोपदेश को बिना किसी हिचक के स्वीकार कर लेंगे। हे राजकुरूपी कमल के भास्कर! यदि तुम अपने परिवार की बातें मत सुनो तो तुम निस्संदेह आकाश में विचरण करने लगोगे। यदि तुम हमारे शास्त्र के अनुसार देवी की पूजा करोगे तो देवी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर तुम्हारी सभी कामनाएं पूरी कर देंगी।'

राजा आतुरता से कहते हैं—

'हाँ हाँ योगीश्वर! मैं आपके कहे अनुसार देवी की पूजा करने को तैयार हूँ। आप बतलाइए, क्या-क्या पूजा सामग्री एकत्रित की जाये? आप जो भी कहेंगे मैं सब कुछ करूँगा।'

बस, इतना सुनते ही भैरव पुलकित हो कहता है—

'नरनाथ! आप प्रत्येक जाति के जलचर, थलचर, नभचर पशु-पक्षियों के नाना वर्ण के नर-मादे-जोड़े एकत्रित कराइए। इनमें मनुष्य युगल भी होना चाहिए। जो युवावस्था में हों ऐसे पशु-पक्षी के सैकड़ों जोड़े और युवा मनुष्य का जोड़ा मंगाइए। पुनः चण्डीदेवी के मंदिर में इनकी बलि कीजिए। बस उसी समय चण्डी देवी और मैं भैरवानन्द तुम पर प्रसन्न हो जायेंगे। तभी तुम्हें आकाशगमन की शक्ति प्राप्त हो जावेगी और सभी विद्याधर तुम्हारी पूजा, सेवा करने लगेंगे। तुम्हारी तलवार में ज्योतिर्मय जयश्री आ

बसेगी, तुम्हें अमरत्व प्राप्त हो जावेगा और तुम्हारा शरीर कभी जराग्रस्त नहीं होगा।'

भैरव की स्वप्रशंसा युक्त बातों से राजा का चित्त चमत्कृत हो जाता है। वे उसके प्रभाव में आकर वैसा ही करने के लिए मन में निश्चय कर लेते हैं। पुनः मंत्रियों से कहते हैं—

'मंत्रियों! सुनो, इन भैरवानंद को समस्त धन दे डालो, भक्ति भाव से नमन करो और इनके ऊपर श्वेत छत्र लगाओ। इनके कहे अनुसार सारे पशुओं के जोड़े, पक्षियों के मिथुन और नरयुगल भी एकत्रित करो। चण्डीदेवी के मंदिर में बहुत बड़ा मण्डप बनवाओ और वहीं पर इनको मँगाकर रखो और जो भी वस्तुएं ये योगी जी कहें वह सब अविलम्ब तैयार कराओ, जिससे हमारी अभिलाषा पूर्ण हो।'

मंत्रीगण बड़े हर्ष से कहते हैं—

'जो आज्ञा महाराज! बहुत ही शीघ्र सुन्दर-सुन्दर पशु-पक्षियों के भिन्न-भिन्न रंगों के युगल आपको दिखाए जाएंगे। सारी ही सामग्री आपके मन के अनुकूल ही एकत्रित की जावेगी।'

उस दिन सभा विसर्जित हो जाती है। राजा आकाशगामिनी विद्या की आकांक्षा से बार-बार उस पापिष्ठयोगी को प्रणाम करके अपने अंतःपुर की ओर चले जाते हैं।

(१६)

राजपुर नगर की दक्षिण दिशा में 'चण्डीमारी' नाम की कुल देवी का मंदिर है। वहाँ विराजमान चण्डीदेवी का विकराल रूप

देखते ही डर लगता है। उस देवी के वक्षस्थल पर नरमुण्डों की माला लहरा रही है, उसके मुख की डाढ़ें दूज के चन्द्रमा के समान आकार वाली विकराल हैं, उसकी तीन आँखे हैं, जिनमें से अग्नि की ज्वाला निकल रही है, उसकी लपलपाती हुई जीभ रक्त से ओत-प्रोत है, कपोलों पर चर्बी की कर्दम का लेप लगाया गया है, उसकी करधनी धोनस जाति के विकराल सर्प की है, जो उसके पैरों तक लटक रही है उसका शरीर श्मशान की धूलि से धूसर है, उसके शिर के केश कर्कश ऊपर को उठे हुए अग्नि की शिखा के समान हैं, उसके हाथ के अग्रभाग मृत मनुष्यों की आंतों के पुंज से भूषित हैं, वह नग्ना, पापिष्ठा और विचारहीन है, उसके नेत्र गुंजा के समान लाल हैं जिनकी पुतलियाँ चंचल हैं, उसका मुख माँस का ग्रास निगलने के लिए खुला हुआ है, वह नरकंकाल, कपाल और त्रिशूल धारण किए हुए है। ऐसी इस चण्डीदेवी ने अनेक जीवों को त्रासित और पापबद्ध किया हुआ है। वह सतत् रुधिर से अर्चित चक्र, शूल, सर्प, खड्ग को धारण किए रहती है।

ऐसी इस कात्यायनी देवी के मंदिर में बहुत बड़ा मंडप बनवाकर वहाँ पर बकरों के जोड़े, रीछ, सूकर, हरिण, हाथी, व्याल, बैल, गधे, मेंढ़ा, महिष, रीझ, घोड़ा, ऊँट, भालू, सिंह, सरभ, गेंडा, व्याघ्र, खरगोश, चीता तथा इसी प्रकार के अन्य बहुत से चतुष्पाद पशुओं के जोड़े एकत्रित किए गए हैं। उसी प्रकार कंक, कुरर, मोर, हंस, बगुला, चकोर, उल्लू, सरड, कौवा, कोडी, कबूतर, पुँस्कोकिल आदि नाना जाति के पक्षियों के युगल मंगाए गए हैं। ऐसे ही जलचर जीवों में कर्म,

मगर, गोह, ग्राह, मछली तथा रोहू आदि न जाने कितने प्रकार के जन्तुओं के युगल वहाँ उपस्थित किए गए हैं।

महाराज मारिदत्त अपने सामंत, भट्ट और किंकरों के साथ हाथ में तलवार लिए हुए देवी जी के दर्शन के लिए वहाँ आ रहे हैं। उनके आगे-आगे नगाड़े आदि बाजे बज रहे हैं। जब वे मंदिर के अंदर प्रवेश करते हैं तब पहले वे कात्यायनी देवी के सामने आकर भक्तिभाव से हाथ जोड़कर साष्टांग नमस्कार करते हैं उसके विकराल रूप को देखकर मन में प्रसन्न हो जाते हैं और सोचने लगते हैं—

'अवश्य ही यह चण्डीदेवी मेरी अभिलाषा को पूर्ण करेगी। आगे बढ़कर किंकरों के द्वारा दिखाये गये सारे पशु-पक्षी के युगलों का निरीक्षण करते हैं। पुनः सर्वत्र देखकर लाल तथा व्याकुल नेत्र करके चण्डकर्मा सैनिक से कहते हैं—

'रे सैनिक प्रवर चण्डकर्मा! तू तुरंत ही एक अच्छे मनुष्य के जोड़े को ला, क्योंकि मैं यहाँ सर्वप्रथम उसका ही बलिदान करूँगा।'

राजा का आदेश पाकर वह चण्डकर्मा सैनिक अपने निजी किंकरों को मनुष्य युगल लाने के लिए भेज देता है। इधर भैरवानंद राजा मारिदत्त को पूजन करने के स्थान पर बिठाकर उनसे पूर्व की पूजा विधि प्रारंभ करा देता है। राजा स्वयं हिंसा में आनन्द मान रहे हैं और खूँखार क्रूर मुद्रा से पूजा कर रहे हैं। सच ही है, उस स्थान पर शांतचित्त वाले क्यों ठहर सकेंगे? वहाँ पर उस समय जितने भी लोग दिख रहे हैं सब चण्डकर्मा ही बन रहे हैं। राजकिंकर नरयुगल को ढूंढ़ते हुए नगर में तेजी से भ्रमण कर रहे हैं।

(१७)

उस बलिदान के पूर्व दिन अपराह्न में ही श्री सुदत्ताचार्य महाराज अपने विशाल चतुर्विध संघ को लेकर राजपुर के बाहर नंदनवन में आते हैं। वहाँ के बसंत ऋतु का वातावरण देखकर मन में विचार करते हैं। यहाँ तो आमों के वृक्षों में पुष्प मंजरी फूल रही है उन पर शुकों के बच्चे बैठे हुए हैं और कोयलों की कूहू-कूहू ध्वनि से सारा ही नंदनवन मुखरित हो रहा है। इधर मालती की कलियाँ खिल रही हैं। उन पर भौंरे गुंजार रहे हैं। सामने देखते हैं तो मधुर वृक्षों की शाखाओं पर बैठकर वायु के झकोरे से झूला झूल रहे हैं। एक तरफ मयूर अपने पंखों को फैलाकर नाच रहा है और अपनी मयूरनी को दिखा रहा है। कुछ और आगे बढ़कर देखते हैं तो विट पुरुष वेश्याओं के साथ लता मण्डपों में प्रवेश कर रहे हैं। दिगम्बराचार्य श्री सुदत्त मुनिराज विचार करते हैं—

"यह उद्यान तो हमारे संघ के लिए योग्य नहीं है, यहाँ तो कामदेव ने अपना साम्राज्य फैला रखा है। मेरे संघ में बाल, युवा और वृद्ध सभी मुनि काम के विजेता हैं, आर्यिकाएं भी ब्रह्मचर्य की मूर्तिमति प्रतिमाएं हैं फिर भला ऐसे सरस उद्यान में हमारा वीतरागी संघ कैसे ठहराया जा सकता है?....."

कुछ क्षण बाद श्मशान भूमि में प्रवेश करते हैं। वहाँ का घृणित भयावह दृश्य देखते हैं। कहीं चितायें जल रही हैं, कहीं नरकंकाल पड़े हुए हैं, कहीं अधजली चिताओं पर कौवे और कुत्ते झपट-झपट कर पड़ रहे हैं और उनके अधजले माँस को नोंच-

नोंच कर खा रहे हैं। वहाँ से आगे बढ़कर आचार्यदेव एक सुन्दर पहाड़ी पर पहुँचते हैं और उस स्थान को प्रशस्त, निर्दोष निर्णीत कर अपने पूरे संघ को वहीं पर ठहरने का आदेश दे देते हैं।

अगले दिन प्रातःकाल होता है, आचार्यदेव की वंदना करके सभी मुनिगण अपनी-अपनी चर्या में प्रवृत्त हो जाते हैं। कोई शास्त्र की वाचना कर रहे हैं, कोई किन्हीं विद्वान उपाध्याय मुनि के निकट अध्ययन कर रहे हैं। कोई सूत्रों का उच्चारण कर रहे हैं, कोई गाथाओं का पाठ कर रहे हैं, कोई स्तोत्रों के द्वारा जिनेंन्द्रदेव का गुणगान कर रहे हैं, कोई अपनी शुद्ध आत्मा का ध्यान कर रहे हैं और कोई आपस में तत्त्वचर्चा कर रहे हैं। कहीं न्याय ग्रंथों का मंथन हो रहा है, कहीं सिद्धान्त ग्रंथों की चर्चा चल रही है तो कहीं अध्यात्म ग्रंथों का पठन चल रहा है।

आर्यिकाएं भी मुनि निवास से कुछ दूर अपने संघ सहित अपनी आवश्यक क्रियाओं में उद्यत हैं। कोई आर्यिका नूतन आर्यिकाओं को विद्याध्ययन करा रही हैं, कोई तत्त्व चर्चा में तत्पर हैं तो कोई सिद्धान्त और न्याय ग्रंथों का पारायण कर रही हैं। कोई व्याकरण, कोष, अलंकार, छंद आदि ग्रंथों का पठन कर रही हैं।

इन्द्र, चंद्र और नागेन्द्र से वंदित महामुनि सुदत्ताचार्य शुद्ध विस्तृत धरातल में पवित्र शिला पर विराजमान हैं। आज इस नगर में बलिदान होने वाला है अतः हिंसा का दिन समझकर प्रायः सभी मुनि-आर्यिकाएं उपवास ग्रहण कर लेते हैं, किन्तु सुदत्ताचार्य अपने दिव्यज्ञान से होनहार भविष्य को जानकर अपने संघ में

स्थित क्षुल्लक युगल — अभयरुचि और अभयमति को आहार के लिए नगर में जाने की आज्ञा दे देते हैं।

वे क्षुल्लक-क्षुल्लिका गुरुदेव की आज्ञा के अनुसार आहार के लिए शहर में प्रवेश करते हैं। ये जिनेन्द्रदेव के चरणों के भक्त हैं, धार्मिक नियमों का विधिवत् पालन करने वाले हैं, विषयों से पूर्णतया विरक्त हैं, वय से लघु होते हुए भी बुद्धि से महान हैं, गंभीर हैं, धीर-वीर हैं। दयाभाव से युक्त चार हाथ आगे जमीन को देखते हुए ईर्यापथ शुद्धि से चल रहे हैं। मार्ग में न किसी से वार्तालाप करते हैं, न हँसते हैं, न इधर-उधर देखते ही हैं।

सहसा राजकिंकरों की टोली उनके निकट पहुँचती है। इनको देखते ही वे लोग आपस में चर्चा करने लगते हैं —

'ओ हो! बड़े भाग्य से यह जोड़ा दिखा है। कितना सुन्दर युगल है यह? ऐसा लगता है विधाता ने इसे हमारे लिए ही भेजा है। सचमुच में देवीजी के मंदिर में सर्वप्रथम इनका बलिदान ही उत्तम होगा।'

क्रूर मुद्रा में, नंगी तलवार हाथों में लिए हुए वे जल्लाद आगे बढ़कर उन क्षुल्लक-क्षुल्लिका युगल को पकड़ लेते हैं।

'बलिदान' शब्द को सुनकर क्षुल्लक अभयरुचि क्षणमात्र में ही समझ जाते हैं कि हमारे ऊपर कोई आकस्मिक उपसर्ग आ पहुँचा है। धीरमना अभयरुचि तत्क्षण ही बहन से कहते हैं —

'हे कन्ये! अभयमति! इस समय अपनी मृत्यु का अवसर दिख रहा है, तुम भयभीत मत होओ, अपने हृदय में श्री जिनेन्द्रदेव का स्मरण करो।'

तब निर्भयचित्त हुई अभयमति कहती है—

हे भाई! आप मेरी बिल्कुल भी चिन्ता मत कीजिए। भला मरण के भय से मैं डर सकती हूँ? अब हमें जिनेन्द्रदेव के धर्म का लाभ मिल चुका है। अतः अब हमें किसी भी उपसर्ग से व्याकुलता नहीं है। मैं अपने इस सांसारिक जीवन को तुच्छ समझती हूँ, मुझे इस शरीर की कोई भी परवाह नहीं है।'

इतना सुनकर क्षुल्लक अभयरुचि निश्चिंत हो जाते हैं और उन जल्लादों के द्वारा मजबूती से पकड़े हुए उनके साथ चले आते हैं। मार्ग में जल्लाद बड़बड़ाते हुए उन्हें ला रहे हैं। वे जल्लाद क्रूरकर्मा होने से कभी हुँकार करते हैं, कभी अट्टहास करते हैं, कभी आपस में चर्चा करते हैं। एक कहता है—

'अरे! चण्डिका देवी के मंदिर में इतने तिर्यंच युगल इकट्ठे किये गये हैं, किन्तु नरयुगल के बिना वे सभी मारे नहीं जा सके हैं, अब आज उन सबका वध किया जायेगा।'

दूसरा कहता है—

'अपने स्वामी, महाराज मारिदत्त नर युगल की प्रतीक्षा में ही बैठे हुए हैं, चलो, जल्दी-जल्दी चलो। जिससे बलिक्रिया जल्दी ही शुरू की जा सके।'

इनकी उग्र बातों को सुनते हुए भी दोनों भाई-बहन शान्तभाव से जिनेन्द्रदेव का हृदय में स्मरण करते हुए चले आ रहे हैं। वे कठोर राजसेवक यम के समान ललकारें मारते हुए उन दोनों को पकड़े हुए चण्डी देवी के मंदिर में आ जाते हैं।

(१८)

उस समय देवी के मंदिर में कोई सिंग फूंक रहे हैं, कोई बाणों को ऊपर उठा रहे हैं और अपने भुजदण्डों पर धनुष के दण्ड दिखा रहे हैं। वे लम्बे मयूर पंखों को लगाये हुए शरीर में काली स्याही पोते हुए एवं पीतल के आभूषण धारे हुए हैं। उनकी कमर पर वस्त्र के टुकड़ों की ध्वजाएं बँधी हुई हैं। उनके हाथों में चर्म और कपाल चमक रहे हैं। इस प्रकार वे सभी पुरोहित अपने अंगों को चमड़े से ढ़के हुए कौल धर्म की घोषणा कर रहे हैं। वे अपनी विशेष मुद्रा से दूर से ही नमस्कार कर रहे हैं। वे सभी मंदिर में इधर-उधर चलते हुए पैरों से पृथ्वी को कूट रहे हैं। उस समय उस मंदिर में बहुत से कौलधर्मी इकट्ठे हो गये हैं। वे आठों अंगों को नवाते हुए बलखाते हुए अट्टहास कर रहे हैं। कोई ढोलक, मृदंग, पटह, काहल आदि बाजे बजा रहे हैं। कोई नाच रहे हैं, कोई गा रहे हैं, कोई मद्य पी-पीकर उन्मत्त हो नाना चेष्टाएं कर रहे हैं।

वहाँ पर पशुओं के सिर कटे हुए पड़े हैं, लोग रस-चर्बी से मिश्रित माँस का प्रसाद खा रहे हैं, वे अपने मुख में रुण्ड के टुकड़ों को ग्रहण कर चामुण्डा देवी के प्रचण्ड गीत गा रहे हैं, अपने दुष्प्रेक्ष्य लाल आँखों द्वारा दर्शकों के हृदय में क्षोभ उत्पन्न करने वाली योगिनी, शाकिनी और डाकिनी नृत्य कर रही हैं। वहाँ के प्रांगण की भूमि रुधिर के जल से सींची गई है। वहाँ पर पशुओं की लम्बी-लम्बी जिह्वाओं से देवी के सामने विशेष पूजा की गई है। पशुओं के वसा से बने हुए तेल के दीप जलाए जा रहे हैं और

पशुओं की हड्डियों के चूर्ण से रंगावली की गई है तथा पशुओं के चर्म के चन्दोवे से ही आकाश मण्डप सजाया गया है।

ऐसे उस भीषण भयावह स्थान में क्षुल्लक-क्षुल्लिका पहुँचते हैं। उन्हें राजा मारिदत्त के सामने ले जाया जाता है। महाराज मारिदत्त की मुद्रा भी मानवोचित न होकर राक्षस के समान क्रूर दिख रही है। ऐसा सब कुछ देखते हुए भी वे क्षुल्लक युगल न भयभीत होकर काँपते हैं, न घबराते हैं और न आश्चर्यचकित ही होते हैं, क्योंकि वे जातिस्मरण के हो जाने से ऐसे निकृष्ट दृश्य देख चुके हैं। अथवा तत्त्वज्ञानी विवेकी मनुष्यों को ऐसा कोई भी दृश्य भय अथवा आश्चर्य उत्पन्न करने वाला नहीं हो सकता है। हाँ, ऐसे प्रसंग में साधारण लोग अवश्य ही डर सकते हैं अथवा मूर्च्छित हो सकते हैं। किन्तु इन क्षुल्लक युगल को रंचमात्र भी खेद, द्वेष या चिंता नहीं होती है। ये धीर-वीरमना दोनों राजा की ओर देखते दाहिने हाथ को उठाकर उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहते हैं—

'हे राजराजेश्वर! आप शुद्ध और श्रेष्ठ वंश के हैं। आप राजलक्ष्मी रूपी पद्मिनी के हंस हैं, आपने अपने पराक्रम और तेज से समस्त यश को संचित किया हुआ है। आपको धर्म का लाभ होवे।'

उनके इस क्रूर कर्म को शांत करने वाले तथा धर्म को बढ़ाने वाले मधुर घोष से राजा का द्वेष उसी प्रकार शान्त हो जाता है कि जैसे मूसलाधार वर्षा से ग्रीष्म ऋतु की तपन शांत हो जाती है। इन बालक युगल को देखकर राजा एकटक उन्हीं की ओर देखते ही रह जाते हैं उनके मन में करुणा भाव के साथ प्रेम-भाव उमड़ आता है

और सोचने लगते हैं—

इनका सौंदर्य, इनकी गंभीरता, इनके चेहरे की भव्यता, इनके एक-एक अंग-उपांग 'ये किन्हीं महापुरुष के वंश में जन्में हैं' ऐसा सूचित कर रहे हैं। इनका भाल राजपट्ट के सदृश है। ये अति सुकुमार यहाँ कहाँ से आ गये हैं? हाय! यह दैव बड़ा ही दुष्ट है जो सज्जनों के सुख को नष्ट करने वाला है। ये अपने समस्त अंगों की मुद्रा से सामुद्रिक शास्त्र में कहे गये शुभ लक्षणों से युक्त हैं। फिर इन्होंने वसुधा के राज्य का उपभोग क्यों नहीं किया?

यह बालक कोई देवेन्द्र है या नागेन्द्र! यह बालिका भी साक्षात् लक्ष्मी है या सरस्वती? कान्ति-कीर्ति है या धृति है अथवा शांति ही है? अथवा ये स्वयं चण्डमारी देवी ही है, जो मेरे भक्तिभाव को देखकर इस पृथ्वी पर पैर रखकर यहाँ आई है?

अथवा इतने ऊहापोह से क्या? मैं अपने हृदय के कौतुक को छोड़कर इन्हीं से क्यों न पूछ लूँ।

इतने क्षण सभी पुरोहित, भट्ट आदि लोग और किंकर समूह सर्व कार्यों को छोड़कर इन्हीं नरयुगल को देखने के लिए वहाँ एकत्रित हो गये और एकटक उनके रूप को, तेज को देखते हुए करुणा से द्रवित हो गये।

सभी के हृदय में प्रायः यह धारा चलने लगती है—

'अहो! इन कोमल शरीरधारी नरमिथुन को आज यहाँ मौत के घाट उतार दिया जाएगा। हाय! यह कैसी विधि की विडम्बना है?"

इसी मध्य राजा पूछते हैं—

'हे कुमार! तुम कौन हो? यहाँ तक कैसे आए? क्या तुम राज्य से भ्रष्ट होकर, शत्रुओं से डरकर, अपनी प्रजा को छोड़कर, अपनी राजधानी से भागकर यहाँ आए हो? यह कुल को आनन्ददायिनी कुमारी किसकी पुत्री है! तुम नववयस्क मानवों में एक विशेष युवक होते हुए भी इतने मानहीन क्यों हो गये हो? शिशुओं की शिक्षा दीक्षा और गुणों की परीक्षा यह महान् अद्‌भुत बात है? तुम मेरे प्रश्नों का समुचित उत्तर देकर मेरी जिज्ञासा को शांत करो।'

हे राजन्! ऊसर क्षेत्र में बीज बोना, सर्प को दूध पिलाना अथवा सूखे वृक्ष को सींचना जैसे व्यर्थ है वैसे ही जिनधर्म के प्रतिकूल मनुष्य को परमागम का उपदेश देना व्यर्थ है। हे नर नाथ! हमारी कथा एक धर्मविद्या है वह उत्तम पुरुषों द्वारा ही श्रवण करने योग्य है.....'

कुमार के वचन सुनकर राजा उनकी कथा को सुनने के लिए उत्कण्ठित हो ढोल-नगाड़ों के शब्द बंद करा देते हैं। चामुण्डा देवी के लिए बजते हुए प्रचण्ड डमरू महान् किलकिलाहट और कलकल शब्दों को रोक देते हैं। उस समय सभी लोग हिंसा के खिलवाड़ को छोड़कर निश्चल चित्त हो जहाँ के तहाँ खड़े या बैठे रह जाते हैं। चंचलता को छोड़कर स्थिर हो जाते हैं। सर्वत्र वातावरण शांत हो जाता है। तब क्षुल्लक अभयरुचि अपनी मधुर वाणी में अपना इतिहास प्रारंभ करते हैं—

'हे राजन्! सुनिये, मैंने जो कुछ देखा है, सुना है और अनुभव किया है वह सब तुम्हें सुनाता हूँ। हे न्याय-नीति प्रिय

राजन्! तुम एकचित्त होकर सुनो।

इसी भरत क्षेत्र में अवन्ति नाम का देश है, वहाँ उज्जयिनी नाम की नगरी है, उस नगरी में बहुत दिन पूर्व यशबंधुर नाम के राजा हुए हैं। उनके पुत्र यशोध थे, उनकी महारानी अजितांग राजा की पुत्री चन्द्रमती थीं। मैं उन यशोध राजा का पुत्र यशोधर हूँ। जब मैं पिता की दृष्टि में राजनीति में योग्य निष्णात हो गया तब राजा ने मेरे ऊपर राज्यभार सौंपकर आप मुनि दीक्षा ले ली। विराट नगर के विमलवाहन राजा की पुत्री अमृतामती मेरी महारानी थीं, जो कि मुझे सर्वाधिक प्रिय थीं। एक समय मैंने रात्रि में देखा कि 'मेरी रानी मुझे निद्रित हुआ जान मेरी भुजाओं से अपने को अलग कर उठकर शय्यागृह से बाहर जा रही है।' अकस्मात् मेरी निद्रा खुल गई और मैं चुपके से नंगी तलवार लेकर उसके पीछे-पीछे चल दिया। मैंने देखा वह अमृतादेवी महारानी एक कुबड़े महावत के पास पहुँचकर उसके साथ व्यभिचार कर्म कर रही है। मेरे मन में बहुत ही तीव्र क्रोध आया और मैं उन दोनों को मौत के घाट उतारने के लिए उद्यत हुआ, किन्तु इसी बीच मेरे अंतःविवेक ने मुझे रोक लिया। मैंने सोचा मेरी जो तलवार शूरवीरों पर चलती है उससे इस दुश्चरित्रा स्त्री की क्या हत्या करूँ? मैंने अपने आप को संभाल लिया और जैसे वहाँ गया था वैसे ही उन लोगों को ज्ञात न करके ही वापस आकर अपनी शय्या पर लेट गया। कुछ देर बाद रानी भी आकर मेरी भुजाओं में अपनी भुजाओं को डालकर सो गई। परन्तु मुझे उस रात्रि नींद नहीं आई। संसार की स्थिति का चिंतवन करते हुए मुझे वैराग्य उत्पन्न हो गया और मैंने

दीक्षा लेने का निर्णय बना लिया।

प्रातःकाल माता चन्द्रमती से आज्ञा लेने पहुँचा तो मैंने सही बात नहीं बताई प्रत्युत कुछ दुःस्वप्न का बहाना कर सन्यासी होने की बात कही। माता ने पुत्रमोह में पड़कर मुझे दुःस्वप्न की शांति हेतु मुर्गे की बलि करने को कहा। मैंने जब हिंसा कर्म से सर्वथा इंकार कर दिया तब माता ने कहा —

'हे पुत्र! तुम अहिंसा की रक्षा करते हुए आटे के मुर्गे की बलि करो।' मैंने भी माता के मोह में पड़कर विवश हो उनकी बात रख दी और आटे के मुर्गे को बनवाकर देवी के सामने बलि कर दी पुनरपि मैं दीक्षा के लिए तैयार हो गया। अंत में मेरी पत्नी अमृतामती को कुछ आशंका हो गई कि 'हो सकता है राजा ने मेरे दुश्चरित्र को देख लिया हो। इसीलिए राज्य वैभव छोड़कर दीक्षा लेना चाहते हैं।' उसने षड्यंत्र रचा और माता चन्द्रमती के साथ हमें विषमिश्रित भोजन कराकर मार डाला। बलिकर्म के पाप के फल से मैं मरकर मयूर हो गया और मेरी माता का जीव कुत्ता हो गया। कुछ दिन बाद हम दोनों अपने ही घर अपने प्रिय पुत्र राजा यशोमति के पास भेंट में लाये गये। पत्नी के अभिसार कर्म को देखकर एक दिन मैंने उस पर झपट कर मारना चाहा तभी दासियों द्वारा पीटा गया और मेरी माता कुत्ते के जीव द्वारा गरदन दबोच दी गई। मेरी मृत्यु से पुत्र यशोमति के दुःख का पारावार नहीं रहा अतः दुःख और क्रोध से अंधे हो मेरे पुत्र ने कुत्ते के सिर को फोड़ डाला।

राजन्! जब मैं सक्षम था, शूरवीर था तलवार मेरे हाथ में थी

तब तो मैंने पत्नी अमृता को नहीं मारा था और देखिये तो सही, जब मैं असहाय पक्षी मयूर की योनि में था तब उसके व्यभिचार को न सहन कर मारने दौड़ा। सच है पशु पक्षियों में विवेक कितना रह सकता है? अनंतर मैं नकुल की योनि में पहुँच गया और वह कुत्ते का जीव सर्प हो गया। मैंने बिना समझे बूझे ही उस सर्प के टुकड़े-टुकड़े करके खा लिया। मैं नेवले की पर्याय से निकल शिप्रा नदी में मछली के गर्भ से मछली हो गया और मेरी माता का जीव उसी नदी में सुंसुमार हो गया। एक समय मेरे पुत्र यशोमति की अन्तःपुर की दासियाँ इसी नदी में जलक्रीड़ा कर रही थीं। उनमें से एक कुब्जा को इसी सुंसुमार ने पकड़ लिया। तब राजा की आज्ञा से धीवरों ने सुंसुमार को नदी से बाहर निकाला और साथ ही मुझे भी जाल में फँसाकर पकड़ लिया। उस समय उन हत्यारों ने सुंसुमार को राजा की दासी के मारने के दण्ड में अग्नि में भुनवाकर मरवा डाला और मुझे मारते समय राजपुरोहित ने कहा कि यह 'रोहित' मत्स्य है इसे मत मारो इसके लक्षण ऐसे हैं कि इसका पितृवर्ग के लिए श्राद्ध करना चाहिए। तब मेरी राजमहल में अपनी ही पत्नी अमृतादेवी के द्वारा पूँछ कटवा कर खाई गई। पुनः मुझे जीवित ही तेल की कढ़ाई में तला गया और विप्रों को परोसकर मेरे ही पत्नी, पुत्र, परिजनों ने मेरे माँस का भक्षण किया। हाय, हाय बाप रे! इन वेदनाओं को मैंने कैसे सहा है?

राजन्! तुम्हें अब यह लंबी कथा कहाँ तक सुनाऊँ। अनंतर मेरी माता असह्य वेदना से मरकर पास के ही गाँव में बकरी हो गई

और मैं मछली की योनि से निकलकर उसी के गर्भ से बकरा हो गया। जब मैं जवान हुआ तब अपनी माता बकरी साथ ही मैथुन करने लगा। हाय, हाय पशुओं में न तो लज्जा है और न वस्त्रों का आच्छादन। देखो वहाँ जननी ही पत्नी हो जाती है। उसी मैथुन कर्म में प्रवृत्त हुए मुझे एक बड़े बकरे ने आकर अपने सींगों से घायल कर मार डाला। उस बकरे की योनि से मरकर मैं पुनः उसी बकरी के गर्भ में आ गया कि कुछ समय पहले मैं जिसके साथ रमण कर रहा था। ओह! मैं ही उस बकरे का जनक बन गया और मैं ही उसका पुत्र हो गया। संसार की इस विचित्रता को धिक्कार हो। एक बार मेरी माता बकरी एक बकरे के साथ मैथुन क्रीड़ा में आसक्त थी कि उसी समय मेरे पुत्र यशोमति शिकार खेलते हुए वहाँ आये और उन बकरे-बकरी को बाण का निशाना बना डाला। उस समय मैं उस बकरी के गर्भ में स्थित था। राजा ने देखा यह मृतप्रायः बकरी गर्भवती है तत्क्षण ही बकरी के उदर को फाड़कर मुझे जीवित ही निकाल लिया और मेरे माता-पिता वे बकरा-बकरी मर गये। मैं राजा के घर में पला, बड़ा हुआ और अपने पुत्र-पौत्रों की सेवा करने लगा। एक दिन राजा ने शिकार के समय कात्यायनि देवी से प्रार्थना की और अधिक शिकार का लाभ होने पर देवी के सामने एक मोटे भैंसे की बलि चढ़ाई थी। मैं घर में लोहे की मोटी सांकल से बँधा हुआ सारा दृश्य देखा करता था। मैं उस समय अपनी भार्या अमृतादेवी को कुष्ट रोग से व्यथित सड़े-गले अंगों सहित देख रहा था। किन्तु आश्चर्य इस बात का था कि उसकी

मांसाहार में प्रवृत्ति व हिंसा कर्म में प्रवृत्ति घटने के बजाय बढ़ी ही थी। तभी उसकी इच्छानुसार मेरे पुत्र ने मेरे पिछले पैर को कटवा कर, पकवाकर, उसे खिलाकर अपने मन को और अपनी माता को संतुष्ट किया। हाय, हाय, मैं उस समय तीन पैर के बल खड़ा हुआ अकथनीय वेदना से कराह रहा था और मे मे कर रहा था परन्तु वहाँ मेरा स्वामी, रक्षक कौन है?

अहो! जहाँ पुत्र ही पिता की तृप्ति के लिए पिता के ही जीव को मारकर विप्रों को, स्वजनों को खिला रहा हो वहाँ किससे अपनी व्यथा कहना? इसी बीच मेरी माता का जीव जो कि सिंधु देश में एक वणिक के यहाँ मोटा ताजा भैंसा हुआ था वह वहाँ आकर नदी में स्नान कर रहा था। मेरे पुत्र यशोमति के घोड़े को पानी पीते समय उसने मार डाला जिसके प्रकोप से राजा उस भैंसे को सांकल से बंधवा कर और उसके नीचे अग्नि जलवा कर बहुत ही बुरी तरह मरवा रहा था। मैं भी वहीं तीन पैर से खड़ा हुआ 'मे मे' कर रहा था बस राजा ने उसी अग्नि में मुझे भी भुनवा डाला। मैं और मेरी माता का जीव — भैंसा दोनों ही एक साथ मरे और मुर्गी के गर्भ में आ बसे। कुछ दिन बाद हम दोनों एक साथ जन्मे और अंडे से निकलकर चांडालिनी के बाड़े में रहने लगे। राजन्! वहाँ से एक कोतवाल हमें ले आया और मेरे पुत्र यशोमति को भेंट में दे दिया। पिंजड़े में बंद हम दोनों को राजा के नंदनवन में लाके रखा गया था। उसी समय कोतवाल मुनि से विसंवाद कर रहा था तब दिगंबर मुनिनाथ उसे उपदेश देते हुए मेरे भव भवांतर सुना रहे थे

जिन्हें सुनकर हम दोनों को अपने यशोधर से लेकर अब तक के भवों का ज्यों की त्यों स्मरण हो आया था। विषाद और खेद से दुःखी हुए हम दोनों अपने मन को एकाग्र कर मुनिराज के मुख से अहिंसा धर्म के माहात्म्य को सुनकर हर्ष से कुकुड्डू कूं कुकुड्डू कूं की ध्वनि करने लगे कि इस बीच उस नंदनवन में शिकार खेलते हुए मेरे पुत्र ने अपनी रानी कुसुमावली को अपना कौशल दिखाते हुए शब्दबेधी बाण छोड़कर हम दोनों को बेध डाला। हम दोनों छटपटाकर मर गये और गुरु के उपदेश श्रवण के प्रभाव से अपनी तिर्यंच योनि की यात्रा समाप्त कर उसी क्षण अपनी पुत्रवधू रानी कुसुमावली के गर्भ में आ गये।

नव माह बाद हम दोनों पुत्र-पुत्री के रूप में युगलिया होकर जन्मे। तब मेरे पुत्र ने अथवा इस भव के मेरे पिता यशोमति ने इनके गर्भ में आते ही रानी ने मांसाहार, हिंसा को छोड़कर जीवों को अभय दिया है' इसलिए मेरा नाम अभयरुचि रखा और माता के जीव का अर्थात् मेरी पर्याय की भगिनी का नाम अभयमती रखा। जब हम किशोरावस्था में ही थे कि एक दिन मेरे पिता यशोमति शिकार हेतु वन में गये उन्होंने एक दिगम्बर मुनि को देखा उनको मारने के लिए तत्पर हुए ही थे कि बीच में एक वणिक ने कल्याणमित्र बनकर उनके मध्य में स्थित होकर उन्हें हिंसा से उपरत कर मुनि को प्रणाम करने की प्रेरणा दी। मुनि के चरणों में नमस्कार के अनन्तर राजा ने उनसे प्रभावित होकर अपने पिता यशोधर और दादी चन्द्रमती किस गति में गये हैं?'

ऐसा पूछ लिया। तब मुनिराज ने हम दोनों का सारा दुःख भरा इतिहास सुनाया। राजा को वैराग्य हो गया। तब हम दोनों वहाँ आये और गुरुदेव के मुख से अपने भवों को सुनते ही हम दोनों का पुनः अपने पूर्व भवों का ज्यों का त्यों स्मरण हो आया जिससे हम मूर्च्छित हो गये। सचेत होने पर राजा की विशेष आज्ञा से यद्यपि हमने राजपट्ट स्वीकार कर लिया फिर भी तत्क्षण ही उसे तृणवत् त्यागकर हम दोनों गुरुदेव सुदत्ताचार्य की चरण शरण में आ गये।

'तुम दोनों की उम्र अति लघु है, शरीर सुकोमल है।' ऐसा समझकर गुरुदेव ने हम दोनों को मुनि आर्यिका की दीक्षा न देकर क्षुल्लक-क्षुल्लिका बना दिया है। उन्हीं के संघ में विहार करते हुए आज हम आहार के लिए शहर में आ रहे थे कि आपके क्रूर किंकरों ने हम दोनों को पकड़ लिया और बलिकर्म के लिए यहाँ ले आये हैं। राजन् यह हमारी संक्षेप रामकहानी है जो कि मनुष्यों को तो क्या देवों को भी कँपा देने वाली है। हे पृथ्वीनाथ! आप स्वयं सोचें, क्या विष के भोजन से मनुष्य जी सकते हैं? क्या दूसरे जीवों को मारने से मनुष्य को कहीं पर भी शांति मिल सकती है?

ओह! राजन्! मैंने तो मात्र आटे के मुर्गे की बलि चढ़ाकर इतने भयंकर दुःख भोगे हैं तो भला हे पृथ्वीपते! आप इतने पशुओं की बलि चढ़ाकर किन-किन दुर्गतियों में कितने दुःखों का अनुभव करोगे कौन जाने? इसलिए नरनाथ! इस हिंसाधर्म से विरक्त होओ और दयामयी धर्म की शरण में आओ।

क्षुल्लक के मुख से उनका यह हृदयद्रावक इतिहास सुनते-सुनते राजा मारिदत्त का हृदय तो कोमल हुआ ही था किन्तु उस समय पाषाण की देवी चंडमारी का हृदय भी संसार के भयंकर दुःखों से डरा और दया से परिप्लावित हो उठा।

देवी उसी क्षण वहाँ अपने असली सुन्दर वेष में प्रगट हो जाती है और गुरु के चरणों में गिरकर प्रणाम करती है। राजा मारिदत्त देवी के हृदय परिवर्तन को देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं। तभी ये सब लोग घृणित, भयावह, अपवित्र उस स्थान को छोड़कर बाहर आ जाते हैं। वहाँ नूतन मण्डप बनवाकर उसमें प्रवेश करते हैं। देवी अपनी विक्रिया से उस मण्डप को फूलों से, मंगलघंटों और तोरण, चन्द्रोपक आदि उत्तम-उत्तम वस्तुओं से निमिषमात्र में सजा कर भव्य मण्डप बना देती है।

(१९)

नूतन मण्डप में काष्ठ के पृथक्-पृथक् आसन पर क्षुल्लक और क्षुल्लिका विराजमान हैं। चण्डीदेवी स्वयं अपने देवांगना के सुन्दर वेष में सुन्दर वस्त्रालंकारों को धारण किये हुए सम्मुख आकर सुवर्ण पात्रों में उत्तम-उत्तम फल, पुष्प, अक्षत, चंदन, दीप, धूप आदि सामग्री लेकर क्षुल्लक युगल के चरणों की पूजा करती है और पुनः भक्तिभाव से हाथ जोड़कर प्रार्थना करती है।

'हे भगवन्! एक कृत्रिम कुक्कुट घात करने से आपने इस दुःखदायी जन्म-जन्मांतर में भ्रमण किया है किन्तु कौलधर्म के

अनुयायी तो तमाम जीवराशि का भक्षण करते हैं और रुधिर के समुद्र में स्नान करते हैं। मुझ देवी ने तो अज, मेष, महिष, कुक्कुट आदि न जाने कितने मूक प्राणियों का गला कटवाया है। हे देव! मैं पापकारिणी हूँ। किन्तु मेरा यह पाप जब तक मेरा भक्षण नहीं कर लेता है, मुझे दुर्गतियों में नहीं पटक देता है, तभी उससे पूर्व तुम मेरी रक्षा करो, हे पूज्य! महायश! मुझे तीव्र घोर तप की दीक्षा प्रदान करो, मैं उसका पालन करूँगी और अपने समस्त हिंसा कर्म से हुए पापों का संहार करूँगी।'

इस पर अभयरुचि क्षुल्लक कहते हैं—

'हे देवि! हे भद्रमूर्ते! तुम्हारे लिए धर्म में तप का विधान नहीं है। एक मात्र तुम्हारे लिए ही नहीं प्रत्युत समस्त देव-देवियों में तप ग्रहण की व्यवस्था नहीं है। तप ग्रहण के पात्र कौन हैं और कौन नहीं है? सुनो, मैं तुम्हें बतलाता हूँ। नरकगति के असंख्य नारकी, देवगति के असंख्य देव-देवियाँ, इन्द्र-इन्द्राणियां ये कोई भी संयम ग्रहण नहीं कर सकते हैं। हाँ इनमें सम्यक्त्व तो हो सकता है। इनके सिवाय पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतियों में रहने वाले एकेन्द्रिय जीव जो कि अनन्तानन्त हैं ये सब संयम तो क्या धर्मग्रहण के अथवा धर्म श्रवण के भी पात्र नहीं हैं। चूँकि उनके एकमात्र स्पर्शन इन्द्रिय है, चक्षु, कान आदि इन्द्रियाँ नहीं हैं। ऐसे ही लट, केंचुआ आदि दो इंद्रिय, चिंवटी, खटमल आदि तीन इन्द्रिय, मक्खी, मच्छर आदि चार इन्द्रिय प्राणी भी धर्म श्रवण के पात्र तक नहीं हैं। ये सब बेचारे तुच्छ प्राणी धर्म के नाम से बहुत

ही दूर हैं। इनके सिवाय तमाम पंचेन्द्रिय असैनी जीव हैं जो कि कुछ धर्म करके भवनवासी देवों में तो जा सकते हैं किन्तु संयम ग्रहण की योग्यता उनमें भी नहीं है। पंचेन्द्रिय सैनी जलचर, थलचर और नभचर प्राणियों में धर्मश्रवण की व ग्रहण की योग्यता आ गयी है। किन्तु संयम इनके लिए भी असंभव है। हाँ, कदाचित् ये देश संयम ग्रहण कर सकते हैं, अणुव्रती बन सकते हैं।

'हे देवि! मनुष्य पर्याय में भी अगणित भोगभूमियाँ जीवों को भी यद्यपि धर्मश्रवण, सम्यक्त्व लाभ संभव है फिर भी उन्हें संयम लाभ-व्रत लाभ असंभव है। संयम लाभ तो इस जंबूद्वीप के भरत-ऐरावत और विदेह की कर्मभूमियों में ही संभव है। जंबूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करद्वीप संबंधी ढाई द्वीपों की एक सौ सत्तर कर्मभूमियाँ हैं। उनमें जन्मे हुए उच्चवर्णी नर-नारियों को ही संयम ग्रहण करने की पात्रता है। शेष जीव राशि में संयम नहीं है।

अतः हे कल्याण की अभिलाषिणी देवी! तुम इस हिंसामयी दुष्कर्म के भावों को त्याग कर सम्यक्त्वरूपी उत्तम रत्न को ग्रहण करो। यही सम्यक्त्व तुम्हें संसार समुद्र में गिरने से हाथ का अवलम्ब देगा और परम्परा से मुक्ति को भी प्राप्त करा देगा। देखो, तुम्हारी जैसी इस देव पर्याय में भी यदि कोई मिथ्यात्व से ग्रसित हो हिंसा के भाव करता है, विषयों की आशा में लगा रहता है तो वह मर कर पृथ्वी, जल आदि एकेन्द्रिय योनियों में भी चला जाता है और जो सम्यक्त्व से विभूषित दया भाव धारण करता है जैनधर्म की शरण ग्रहण कर लेता है वह नियम से उत्तम कुल में मनुष्य होकर जिन दीक्षा लेकर घोर

तपश्चरण करके मोक्ष को भी प्राप्त कर लेता है इसीलिए हे विक्रियाशालिनी, महामानिनी कुल देवते! अब तुम समस्त जीवों को अभयदान देओ, दयामय धर्म की छत्रछाया में जाओ। तुम्हारे पाप गल जायेंगे और सम्यक्त्व के माहात्म्य से तुम्हारी स्त्रीपर्याय छूट जायेगी। पुनः तुम अगले भव में उत्तम मनुष्य का शरीर प्राप्त कर सकोगी। तभी तप ग्रहण कर सकोगी।

इतना सुनकर चंडीदेवी गुरुदेव के चरण कमलों में बार-बार नमस्कार करती है पुनः-पुनः भक्तिभाव से निवेदन कर सम्यक्त्व ग्रहण करती है और कहती है—

'हे बालयते! हे मुनि कुमार! मैं अब आज से खोटे देवों के नमन का त्याग करती हूँ। कुगुरुओं को भी नमन नहीं करूँगी और खोटे शास्त्रों की बातों को नहीं मानूंगी। मैं आज से श्री जिनेन्द्र देव, उनकी वाणी और सच्चे निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनियों को, आप जैसे क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं को ही नमस्कार करूँगी। इस प्रकार मैं यह सम्यक्त्वरत्न आपसे ग्रहण करती हूँ।

इतना कहकर देवी क्षुल्लक के चरणों में गिरकर प्रणाम करती है पुनः उठकर निवेदन करती है—

'हे पूज्यप्रवर! आपने आज मुझे दुस्तर संसाररूपी महासमुद्र में गिरते समय हस्तावलंबन दिया है। आप प्रवचन की सामर्थ्य रखने वाले कोई महान् देव हैं। आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपकी दासी हूँ। अतः हे गुणनिदान! कहिए, आपको क्या 'वरदान' दिया जाय ?'

वे देशव्रती क्षुल्लक कहते हैं—

'देवी! जो निर्मोही हैं वे दूसरों के दिए हुए दान को नहीं लेते हैं। भला मुझ अकिंचन साधु के लिए क्या चाहिए? जबकि हम सब कुछ होते हुए भी उसको छोड़ कर दीक्षित हुए हैं।'

उनकी इस निःस्पृह वाणी से देवी साधु साधु—बहुत अच्छा, बहुत अच्छा कहती है और सभी उपस्थित जन समुदाय क्षुल्लक की जयजयकार करते हुए खूब प्रशंसा करते हैं।

पुनः देवी राजा मारिदत्त से कहती हैं—

' हे राजन्! तुम अब सौम्यभाव रखो और किसी पशु का भी घात मत करो। वन-उपवन में, चौराहे पर, या मंदिर में जो बहुत से प्राणी वध करने हेतु लाए गए हैं या कृत्रिम रूप से बनाये गये हैं। मैं उन सबको मुक्त करती हूँ। अब से जो कोई भी मेरे उद्देश्य से—मेरे नाम से जीव का बलिदान करेगा, मैं उसका सकुटुम्ब विनाश कर डालूंगी।'

इतना कहकर देवी सारे एकत्रित किए गए पशु-पक्षियों को बंधनमुक्त करा देती है। सब प्राणदान के मिलते ही छलांगे भरकर वन की ओर चले जाते हैं। पक्षीगण मधुर कलरव करते हुए आकाश में उड़ जाते हैं।

राजा मारिदत्त एक क्षण अपने नेत्रों को बंद कर सोच रहे हैं 'अहो! ये मेरी बहन कुसुमावली के पुत्र-पुत्री मेरे भानजे हैं जो कि आज गुरु के रूप में मुझे संबोधने आए हैं।' राजा पुनः पुनः अपने दुर्गुणों की निंदा करते हुए गुरुदेव क्षुल्लक के चरणों में गिरकर

प्रार्थना करते हैं—

हे मेरी सहोदरी कुसुमावली की आँखों के तारे और राजा यशोमति के कुल के सितारे! हे परमेश्वर! एक बनावटी मुर्गे की बलि कर आपने इतने दारुण दुःख भोगे हैं कि उनको सुनकर पाषाणहृदया देवी भी द्रवित हो गई। मैंने तो न जाने कितने प्राणियों का संहार किया है। भला अब मेरी कौन सी गति होगी। हे देव! जब तक मैं नरक के बिल में जाकर नहीं गिरता हूँ, तभी इससे पहले आप मुझे इन पापों से मुक्त कीजिए और अपने जैसी दीक्षा प्रदान कीजिए।'

तभी क्षुल्लक कहते हैं—

"राजन्! मैंने तो मात्र अपना इतिहास सुनाया है। आओ चलें, अपने गुरुदेव के पास। वे हमारे गुरु ही तुम्हें जिनधर्म की शिक्षा और दीक्षा प्रदान करेंगे।'

राजा विस्मय सहित सोचने लगते हैं—

'अहो! एक तो मैं ही लोक में महार्घ और मनुष्यों द्वारा वंदनीय हूँ, सामंत, मंत्रियों तथा माण्डलिकों द्वारा पूज्य हूँ। फिर मेरी भी पूजनीया जो कुलदेवी थी वह भी इनकी दासी हो गई है। अब यदि इन क्षुल्लक का भी कोई एक और गुरु है तब तो, तपस्वियों का इस भुवन में बहुत ही बड़ा माहात्म्य है।'

(२०)

इसी बीच में श्रीसुदत्त आचार्य वहाँ आ जाते हैं। चारों तरफ से जय-जयकार की ध्वनि से सर्व पृथ्वी और आकाश एक हो

जाते हैं। अभयरुचि क्षुल्लक सहसा आसन से उठ खड़े हो जाते हैं और सन्मुख जाकर पृथ्वी पर साष्टांग पड़कर गुरुदेव के चरणों में 'नमोस्तु' अर्पण करते हैं। राजा भी सैकड़ों भवों का नाश करने वाले गुरुराज के चरणों में नमन करता है और सभी लोग भी नमस्कार करते हैं।

जगत्परमेश्वर संघनायक आचार्य आशीर्वाद देते हुए कहते हैं—

'हे राजन्! तुम्हारी धर्मवृद्धि हो।'

तब संतुष्ट मन से राजा उन्हें सर्वोच्च काष्ठ के सिंहासन पर विराजमान करके उनके चरण सानिध्य में विनय सहित बैठकर निवेदन करता है—

'हे भगवन्! हे सर्वज्ञकल्प! हे दिव्यज्ञान के धनी! हे महामुने! अब आप सबसे पहले मुझे मेरे पूर्व भवों का वृत्तांत सुनाइये। इस चण्डीदेवी, भैरवानंद के भी संबंध बतलाइये और आपके द्वारा जो मेरी सहोदरी के कुल का उद्धार हुआ है तथा आप ही मेरे कुल के तारक हुए हैं सो हे नाथ! हम और आपके भी पूर्व में क्या संबंध रहे हैं? सो सब आप कृपाकर बतलाइये। आपके दिव्यज्ञान में तो हम सभी के भव-भवांतर ही क्या यह सारा विश्व ही झलक रहा है।' राजा मारिदत्त की प्रार्थना सुनकर सुदत्त महामुनि परम करुणा बुद्धि से कहते हैं—

हे राजन्! सुनो, मैं सभी के पूर्व संबंधों को सुनाता हूँ।

इसी भरत क्षेत्र के गंधर्व देश में गंधगिरि के समीप एक गंधर्वपुर नगर है। वहाँ के राजा वैधव्य की रानी का नाम विंध्यश्री था। इन दोनों

के गंधर्वसेन पुत्र और गंधर्वश्री पुत्री थीं। पुत्री ने स्वयंवर में अपने राजा के राम नामक मंत्री के पुत्र जितशत्रु के गले में वरमाला डालकर वरण कर लिया। मंत्री की पत्नी का नाम चन्द्रलेखा था उसके एक और भी भीमसेन नाम का छोटा पुत्र था। कुछ दिन बाद यह गंधर्वश्री अपने देवर भीमसेन में आशक्त हो गई। इस घटना को प्रत्यक्ष जान लेने पर उसके पति जितशत्रु ने स्त्रियों के दुश्चरित्र से विरक्त हो मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली। उसके माता-पिता ने भी अपनी बहू के दुश्चरित्र को देखकर विरक्त हो ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया।

इधर राजा वैधव्य कुछ कारणवश विरक्त हो दिगंबर मुनि बन गए तभी रानी विंध्यश्री ने भी व्रत ग्रहण कर मासोपवास आदि तप करना शुरू कर दिया। पिता के दीक्षित होने पर पुत्र गंधर्वसेन ने बहुत ही दिन राज्य संचालन किया। एक बार अपने स्कंधावार सहित निर्मलचित्त होकर पवित्र धर्मयात्रा की और अपने पिता मुनिराज के दर्शन किये। मुनि वैधव्य ने पुत्र के स्कंधावार को देखकर निदान रूप में ऐसे भाव कर लिए कि 'मेरी तपश्चर्या के फल से मुझे अगले भव में ऐसा ही वैभव मिले।' इस प्रकार उस मुनि ने अज्ञान के वश हो रत्नराशि के बदले भूसे का ढेर माँग लिया। कालांतर में अपनी आयु पूरी कर वह मुनि उज्जयिनी नगरी के राजा यशोबंधुर का पुत्र यशोध हो गया और विंध्यश्री साध्वी मरकर अजितांग राजा की पुत्री चंद्रमती हुई थी, वही पुनः इस भव में यशोध की महारानी हो गई।

उधर गंधर्वसेन राजा ने अपनी सहोदरी के दुष्कृत्य को

सुनकर विरक्तचित्त हो दीक्षा ले ली और अनशन व्रत करके निदानपूर्वक मरण कर तू राजा मारिदत्त हुआ है। उधर मंत्रीपुत्र जितशत्रु ने दीक्षा लेकर तपश्चरण किया था वह मरकर रानी चंद्रमती के गर्भ से यशोधर पुत्र हो गया। वह जो भीम पापिष्ठ था जिसने अपनी भावज गंधर्वश्री से संभोग किया था वह मरकर कुबड़ा महाव्रत हुआ था तथा गंधर्वश्री दुराचारिणी मरकर राजा विमलवाहन की कन्या अमृतामती होकर पुनः यशोधर की पट्टरानी हुई थी।

राजन्! पूर्वजन्म के संस्कारवश ही वह पुनः उसी कुबड़े जार में आसक्त हो गई थी। राम मंत्री और चन्द्रलेखा दोनों अपने ब्रह्मचर्य व्रत के प्रभाव से मरकर विद्याधर हुए थे। उनमें से मंत्री का जीव तो राजा यशोमति हुआ है और चन्द्रलेखा का जीव तुम्हारी सहोदरी कुसुमावली होकर पुनः यशोमति की पट्टरानी हुई है। पूर्वकाल में इसी राजपुर में चित्रांगद नामक तुम्हारा पिता राजा था जिसने तुम्हें राज्य देकर अन्य तापसी की दीक्षा ग्रहण कर ली थी। वह इसी देवी के मठ में रहता था। उसने बहुत दिन तक यहाँ मठिका में रहकर तपस्या करते हुए यह भावना भायी कि मुझे ऐसी देवता की ऋद्धि प्राप्त हो। इस निदान भाव सहित वह मरकर 'चण्डिका देवी' हुआ है। इस प्रकार यह तुम्हारा पिता ही पुल्लिंग से स्त्रीलिंग में आ गया है। तुम्हारी जो चित्रसेना माता थी वह मिथ्यात्व सहित, कुछ शुभ भावों से मरकर स्त्रीलिंग को छोड़कर पुल्लिंग में भैरवानंद के रूप में उत्पन्न हुई है कि जिसको तुमने साष्टांग प्रणाम कर गुरु बनाया था। देखो, इस समय उसने भी

अपने शरीर को करुणा से पूरित कर लिया है।

उज्जयिनी नगरी के राजा यशोबंधुर षट्दर्शन के भक्त थे। उन्होंने अनेक मठ, देवालय, कुँआ, बावड़ी, पुष्करिणी और महाकाल के मंदिर बनवाये। तमाम तापसों और भगवती के यतीश्वरों को सरस आहार, इतना ही नहीं कई एक जिनमंदिर बनवाये और खूब दान दिया। फिर भी उनके हृदय में मिथ्यात्व विद्यमान रहा। इन्होंने दीर्घकाल तक राज्य सुख का अनुभव कर अंत में इष्टदेव का स्मरण करते हुए शुभ भाव से मरण किया। जिसके फलस्वरूप कलिंग देश के स्वामी भगदत्त का पुत्र हो गया, जिसका नाम सुदत्त रखा गया।

"हे राजन्! वह सुदत्त मैं ही हूँ। एक बार एक चोर को दण्ड देने में नियुक्त किये गये द्विजों ने नाक, कान, हाथ, पैर काट कर शिरच्छेद कर दण्ड विधान किया। तब मैंने द्विजों से पूछा—

'यदि इसे दण्ड न दिया जाये तो किसे पाप लगेगा?' द्विजों ने कहा—राजन्! यदि यह मारा जाता है तो भी आप को ही पाप है यदि यह छोड़ दिया जाता है तो भी न्याय की दृष्टि से तुम नरेश को ही पाप है।

द्विजवरों की यह बात सुनकर मेरा चित्त विषयों से विरक्त हो गया और मैंने निर्ग्रन्थ दिगंबर दीक्षा ले ली। घोराघोर तपश्चरण करते हुए मुझे मनःपर्ययज्ञान आदि अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हो गई हैं। अपने विशाल संघ सहित इस पुरी में मैं पाँच बार आ चुका हूँ। इस बार कल ही मैं यहाँ अपने संघ सहित आया हूँ।

उज्जयिनी में राजा यशोध का एक गुणसिंधु मंत्री था, वह अपने पुत्र नागदत्त को अपने पद पर स्थापित कर आप स्वयं सर्व द्वन्द से मुक्त हो धर्मध्यान करते हुए घर में ही रहने लगा। वही मंत्री समभाव से मरण कर श्रीपती वणिक का पुत्र हुआ कि जो यशोमति राजा को मुनि हिंसा से बचाकर मोक्षमार्ग में लगाने में राजा का कल्याणमित्र बना था, इसका नाम गोवर्धन है आज यह मेरे संघ में मुनि वेष में स्थित है।

यशोध राजा की चंद्रमती महारानी थी और चन्द्रलक्ष्मी नाम की अन्य रानी भी थी। इन दोनों में सपत्नी द्वेष रहता था। चन्द्रलक्ष्मी का जीव मरकर घोड़ा हुआ था जो कि राजा यशोमति की भेंट में आकर उन्हें अतिशय प्रिय था। माता चंद्रमति का जीव जब महिष होकर नदी में स्नान कर रहा था। तब यह घोड़ा पानी पी रहा था। पूर्व के द्वेष के कारण ही महिष ने घोड़े को मार डाला था। वह घोड़े का जीव मिथिलानगरी के सेठ जिनदत्त की गाय का बछड़ा हो गया था। एक दिन वह मरणासन्न स्थिति में था तभी सेठ ने उसके कान में 'अरहंत, अरहंत' मंत्र को सुनाया। हे राजन्! जिसको सुनते हुए मरकर उस बछड़े का जीव आपकी रानी रुक्मिणी के गर्भ में आ गया। आगे चलकर पुण्यशाली इस राजपुर नगर का स्वामी होगा।

इस प्रकार हे मारिदत्त! हे नरपुंगव! मैंने आपकी जिज्ञासा के अनुसार सभी के भव-भवांतर स्पष्ट करके सुनाये हैं।"

राजा मारिदत्त गुरुराज के मुखारविंद से अपने और अन्य सभी के भव-भवांतरों को सुनकर आनन्द और शोक से पूरित हो

जाते हैं। क्षुल्लक के मुख से राजा यशोधर के भवों को सुनकर तो उन्हें हिंसा से और राज्य भोग से वैराग्य हो ही चुका है वे अब और अधिक वैराग्य रस से परिप्लावित हो गद्गद वाणी में हाथ जोड़कर निवेदन करते हैं—

"हे संसार तारक! हे भक्तजनवत्सल! हे मुनिपते! आपने मुझे संबोधन करके अपूर्व चिंतामणि से भी महान् ऐसा धर्मलाभ दिया है। हे प्रभो! अब प्रसन्न होकर मुझे जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कीजिए।"

आचार्य सुदत्तदेव उन मारिदत्त राजा को नग्न दिगम्बर दीक्षा प्रदान करते हैं। उसी समय अन्य और पैंतीस राजा उन्हीं के साथ दीक्षा ग्रहण कर निर्ग्रंथमुनि हो जाते हैं। राजा मारिदत्त को मुनि हुए देख भैरवानंद योगी अपने मिथ्यात्व को सर्वथा वमन कर आचार्यश्री से निवेदन करता है—

"हे गुणसागर! हे स्वामी श्रेष्ठ! अब आप मुझे भी जैनेश्वरी दीक्षा देने की कृपा कीजिए।"

तब श्री सुदत्ताचार्य कहते हैं—

"हे भद्र! चूँकि तुम्हारे हाथ में छह अंगुलियाँ हैं, अतः तुम्हारी दीक्षा का विधान नहीं है।"

तब वह पूछता है—

"हे देव! पुनः मैं क्या करूँ?"

आचार्य कहते हैं—

"सम्यक्त्व रत्न के साथ-साथ तुम दृढ़तापूर्वक अनशन व्रत को धारण करो। क्योंकि अब तुम्हारी आयु बहुत ही अल्प रह गई

है। अतः अपने परलोक हित के लिए अब तुम शीघ्र ही सल्लेखनाव्रत ग्रहण करो।"

गुरु की आज्ञानुसार भैरवानंद आरंभ-परिग्रह का त्याग कर देता है। मात्र धोती-दुपट्टा ऐसे युगल वस्त्र अपने शरीर पर रखकर, खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय ऐसे चारों प्रकार के आहार का यावज्जीवन त्याग कर देता है और संघ के साधुओं के संरक्षण में विधि से सल्लेखना व्रत ग्रहण कर लेता है। वह बाईस दिन के अनन्तर सन्यास विधि से मरण कर तीसरे स्वर्ग में देव हो जाता है। क्षुल्लक अभयरुचि गुरु के कर-कमलों से निर्ग्रंथ मुनि बन जाते हैं और क्षुल्लिका अभयमती गुरु की आज्ञा से कुसुमावली आर्यिका के पादमूल में आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर लेती हैं। यह दोनों ही गुरु की आज्ञानुसार वहीं पर देवी के उद्यान में जाकर चतुर्विध आराधना में तत्पर हो जाते हैं। अंत में पंद्रह दिन तक सन्यास ग्रहण कर समाधिपूर्वक प्राणों का त्याग कर ईशान नाम के द्वितीय स्वर्ग में देव हो जाते हैं। अभयमती आर्यिका भी सम्यक्त्व के प्रभाव से स्त्रीलिंग को छेद कर देव हो जाती हैं। उन दोनों देवों के उपपादशय्या से जन्म लेते ही बहुत से देव-देवियाँ उनकी भक्ति सेवा में लग जाते हैं।

श्री सुदत्ताचार्य मुनीन्द्र भी अपने चतुर्विध संघ सहित वहीं आ जाते हैं और वे आचार्य स्वयं सिद्धगिरि नाम के पर्वत पर चढ़कर ध्यानस्थ हो जाते हैं। अंत में चतुर्विध आराधना के साथ सन्यास विधि से शरीर त्यागकर सातवें स्वर्ग में महऋद्धिधारी देवेन्द्र हो जाते हैं।

मुनि यशोमती, कल्याणमित्र गोवर्धन और मारीदत्त भी बहुत काल तक पृथ्वीतल पर विहार कर धर्मोपदेश देते हुए अनेक भव्यजीवों को मोक्षमार्ग में लगाते हैं पुनः अंत में सन्यास विधि से मरणकर यथायोग्य स्वर्ग में देवपद प्राप्त कर लेते हैं। आर्यिका कुसुमावली आदि साध्वियाँ भी सन्यासमरण से शरीर छोड़कर सम्यक्त्व के प्रभाव से स्त्रीलिंग छेद कर स्वर्ग में देवपद के ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेती हैं। देखो, कौलधर्म के अनुसरण से तथा बलिदान में धर्म मानने वाले इन यशोधर आदि राजाओं ने क्या-क्या दुःख उठाये हैं? पुनः श्री जिनेन्द्रदेव के कहे अनुसार दयामयी धर्म का आश्रय लेने से कैसे-कैसे देवपद के ऐश्वर्य के स्वामी हुए हैं।

अहो! हिंसा पाप से होने वाली दुर्गतियाँ कहाँ ? जहाँ कि दुःख ही दुःख है और अहिंसा धर्म से होने वाली उत्तम गतियाँ कहाँ ? जहाँ कि सुख ही सुख है। अतः हे भव्य जीवों! इस यशोधर महाराज के रोमांचकारी इतिहास को पढ़कर तुम सतत् जिनधर्म की ही शरण में रहो। इसी धर्म से तुम्हारे सर्व मनोरथ सफल हो जायेंगे और तुम सर्व दुःखों से मुक्त हो जाओगे।

—समाप्त—